चल हंसा उस देस

श्री रजनीश द्वारा 1966 एवं 1970 में
दिए गए सात अमृत प्रवचनों का अपूर्व संकलन.

अनुक्रम

1. ध्यान है : अंतस-क्रांति 1
2. ध्यान का द्वार : सरलता 17
3. ध्यान मंदिर : मनुष्य का मंगल 31
4. ध्यान है : साक्षीभाव 45
5. ध्यान है : अक्रिया 69
6. ध्यान है : भगवत्ता 85
7. संन्यास और अंतस-क्रांति 101

उस देश की भूमि

एक दुनिया है जिसमें सब सामान्यजन जीते हैं, कहना चाहिए कि सभी जीते हैं। उन्हें हम गृहस्थ कहते हैं। समूची दुनिया ही उन्हीं की है। लेकिन इस दुनिया के भीतर एक और छोटी-सी दुनिया है जिसमें कुछ इक्का-दुक्का मुट्ठी भर लोग जीते हैं। उन्हें हम संन्यासी कहते हैं। वे भी इस दुनिया में जीते हैं लेकिन वे इस दुनिया के नहीं होते। वे इस दुनिया में रहते हुए भी किसी और देश के वासी होते हैं। मेरा अभिप्राय किसी अन्य लोक-परलोक से नहीं है, बल्कि ऐसे लोक से है जो हम सबके भीतर, हमारे अंतस केंद्र पर स्थित है। जो व्यक्ति बाहर के घरों में, बाहर की सुरक्षा में उलझा है, लिप्त है वही गृहस्थ है। और जो व्यक्ति अपने अंतर-आकाश की निस्सीमता में सदा उड़ान भरता है—बाहर के सब मानसिक बंधनों से मुक्त होकर—वही संन्यासी है। इस पुस्तक में उसी हंस को उसी उन्मुक्त आकाश में प्रवेश का निमंत्रण है।

लेकिन इसी पुस्तक में श्री रजनीश ने हमें सजग करते हुए उद्बोधन दिया है: "जिनको आप संन्यासी कहते हैं उनको मैं संन्यासी नहीं कहता। जिनको आप गृहस्थ कहते हैं उनको मैं गृहस्थ नहीं कहता। मैं तो सारी दुनिया को ही गृहस्थ मानता हूं। उन गृहस्थों में से कुछ लोग रूपांतरण को उपलब्ध होकर संन्यास को पाते हैं। लेकिन वह संन्यास कोई वस्त्रों से संबंधित है?"

यहां श्री रजनीश जिस संन्यास की बात कर रहे हैं उसका वस्त्रों के परिवर्तन से कुछ लेना-देना नहीं है। उसका लेना-देना है अंतस के आमूल रूपांतरण से। लेकिन अतीत में—और अभी भी—संन्यास केवल वस्त्रों का परिवर्तन बन कर रह गया है। भविष्य में ऐसा संन्यास टिकने वाला नहीं है। श्री रजनीश का कहना है कि

कुछ थोड़े से संन्यासी रह जायेंगे और उन संन्यासियों की कोई वेशभूषा नहीं होगी। हमेशा थोड़े से संन्यासी हुए हैं दुनिया में—यह सच है। लेकिन लाखों की संख्या में जो दिखाई पड़ रहे हैं, इनमें संन्यासी नहीं हैं, न हो सकते हैं। संन्यासी बड़े थोड़े इक्के-दुक्के हैं।

और ऐसे इक्के-दुक्के दुस्साहसी लोग ही श्री रजनीश के सान्निध्य में आकर संन्यस्त हुए हैं। उनके लिए श्री रजनीश का संदेश है : मैं चाहता हूं मेरा संन्यासी पूरा मनुष्य हो, अखंड मनुष्य हो। उसमें मरुस्थल जैसी शांति भी हो, सन्नाटा भी हो और विस्तार भी हो; बगिया जैसे फूल भी हों, झरने भी हों। कोयल भी बोले, पपीहा भी पुकारे। वह अपने को जाने और विराट को भी। कभी आंख बंद करके जाने, कभी आंख खोल कर जाने; क्योंकि बाहर भी वही है भीतर भी वही है। ध्यान से भीतर को जाने, प्रेम से बाहर को जाने।"

इस प्रकार का संन्यास ही सार्थक संन्यास है। उसी संन्यास में ही संन्यास के फूल खिलते हैं। श्री रजनीश ने ऐसे सफल संन्यास के संबंध में कहा है: "मेरा संन्यास वसंत है। मेरा संन्यास फागुनमास है। मेरा संन्यास फूलों की भांति है। यह जीवन का उत्सव है। यह परमात्मा के प्रति धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है। यह त्याग नहीं है। यह भोग नहीं है। यह त्याग और भोग दोनों का अतिक्रमण है। यह इस भांति भोगना है कि भोगो भी और बंधने भी न पाओ। गुजरना है ऐसे संसार से कि गुजर भी जाओ और संसार की धूल तुम पर जमने भी न पाए। संसार तुम्हें छूने भी न पाए, अछूते निकल जाओ। गीत गाते हुए निकल जाओ। यह कोई रोता हुआ संन्यास नहीं है। यह कोई उदासीन नहीं है। यह नाचता हुआ संन्यास है।

यह तो एक नृत्य है, एक उत्सव है, एक महारास है! तैयारी हो जीवन के आनंद को अंगीकार करने की, तो आओ, द्वार खुले हैं; तो आओ, स्वागत है; तो आओ, बुलावा है, निमंत्रण है।"

निमंत्रण है सब हंसों को—उस अनूठे देश के लिए, उस अनूठी भूमि के लिए! चल हंसा उस देश!

स्वामी चैतन्य कीर्ति
संपादक : रजनीश टाइम्स इंटरनेशनल

पहला प्रवचन

ध्यान है: अंतस-क्रांति

प्रश्न: साक्षीभाव क्या है? उसे हम जगाना चाहते हैं। क्या वह भी चित्त का एक अंश नहीं होगा? या कि चित्त से परे होगा?

प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है, और ठीक से समझने योग्य है। साधारणतः हम जो भी जानते हैं, जो भी करते हैं, जो भी प्रयत्न होगा, वह सब चित्त से होगा, मन से होगा, माइंड से होगा। अगर आप राम-राम जपते हैं, तो जपने की क्रिया मन से होगी। अगर आप मंदिर में पूजा करते हैं, तो पूजा करने की क्रिया मन का भाव होगी। अगर आप कोई ग्रंथ पढ़ते हैं, तो पढ़ने की क्रिया मन की होगी। और आत्मा को जानना हो, तो मन के ऊपर जाना होगा। मन की कोई क्रिया मन के ऊपर नहीं ले जा सकती है। मन की कोई भी क्रिया मन के भीतर

ही रखेगी।

स्वाभाविक है कि मन की किसी भी क्रिया से, जो मन के पीछे है, उससे परिचय नहीं हो सकता। यह पूछा है, यह जो साक्षीभाव है, क्या यह भी मन की क्रिया होगी? नहीं, अकेली एक ही क्रिया है, जो मन की नहीं है, और वह साक्षीभाव है। इसे थोड़ा समझना जरूरी है। और केवल साक्षीभाव ही मनुष्य को आत्मा में प्रतिष्ठा दे सकता है, क्योंकि वही हमारे जीवन में एक सूत्र है, जो मन का नहीं है, मांइड का नहीं है।

आप रात को स्वप्न देखते हैं। सुबह जागकर पाते हैं कि स्वप्न था, और मैंने समझा कि सत्य है। सुबह स्वप्न तो झूठा हो जाता है, लेकिन जिसने स्वप्न देखा था, वह झूठा नहीं होता। उसे आप मानते हैं कि जिसने देखा था वह सत्य था, जो देखा था वह स्वप्न था। आप बच्चे थे, अब युवा हो गये। बचपन तो चला गया, युवापन आ गया। युवावस्था भी चली जायेगी, बुढ़ापा आ जायेगा। लेकिन जिसने बचपन को देखा, युवावस्था को देखा, बुढ़ापे को देखेगा, वह न आया, न गया; वह मौजूद रहा। सुख आता है, सुख चला जाता है; दुःख आता है, दुःख चला जाता है। लेकिन जो दुःख को देखता है और सुख को देखता है, वह मौजूद बना रहता है।

तो हमारे भीतर दर्शन की जो क्षमता है, वह सारी स्थितियों में मौजूद बनी रहती है। साक्षी का जो भाव है, वह हमारी जो देखने की क्षमता है, वह मौजूद बनी रहती है। वही क्षमता हमारे भीतर अविच्छिन्न रूप से, अपरिवर्तित रूप से मौजूद है। आप बहुत गहरी नींद में हो जाएं, तो भी सुबह कहते हैं, रात बहुत गहरी नींद आयी, रात बड़ी आनंदपूर्ण निद्रा हुई। आपके भीतर किसी ने उस निद्रापूर्ण अनुभव को भी जाना। उस आनंदपूर्ण सुषुप्ति को भी जाना। तो आपके भीतर जाननेवाला, देखनेवाला जो साक्षी है, वह सतत मौजूद है।

मन सतत परिवर्तनशील है, और साक्षी सतत अपरिवर्तनशील है। इसलिए साक्षीभाव मन का हिस्सा नहीं हो सकता। और फिर, मन की जो-जो क्रियाएं हैं, उनको भी आप देखते हैं। आपके भीतर विचार चल रहे हैं, आप शांत बैठ जायें, आपको विचारों का अनुभव होगा कि वे चल रहे हैं; आपको दिखायी पड़ेंगे, अगर शांत भाव से देखेंगे तो विचार वैसे ही दिखाई पड़ेंगे, जैसे रास्ते पर चलते हुए लोग दिखायी पड़ते हैं। फिर अगर विचार शून्य हो जायेंगे, विचार शांत हो जायेंगे, तो यह दिखायी पड़ेगा कि विचार शांत हो गये हैं, शून्य हो गये हैं; रास्ता खाली हो गया है। निश्चित ही जो विचारों को देखता है, वह विचार से अलग होगा। वह जो हमारे भीतर देखने वाला तत्व है, वह हमारी सारी क्रियाओं से, सबसे भिन्न और अलग है।

जब आप श्वास को देखेंगे, श्वास को देखते रहेंगे, देखते-देखते श्वास शांत होने लगेगी। एक घड़ी आयेगी, आपको पता ही नहीं चलेगा कि श्वास चल भी रही है या नहीं चल रही है। जब तक श्वास चलेगी, तब तक दिखायी पड़ेगा कि श्वास चल रही है; और जब श्वास नहीं चलती हुई मालूम पड़ेगी, तब दिखाई पड़ेगा कि श्वास नहीं चल रही है लेकिन दोनों स्थितियों में देखने वाला पीछे खड़ा हुआ है।

यह जो साक्षी है, यह जो विटनेस है, यह जो अवेयरनेस है पीछे, बोध का बिंदु है— यह बिंदु मन के बाहर है; मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं है। क्योंकि मन की क्रियाओं को भी वह जानता है। जिसको हम जानते हैं, उससे अलग हो जाते हैं। जिसको भी आप जान सकते हैं, उससे आप अलग हो सकते हैं; क्योंकि आप अलग हैं ही। नहीं तो उसको जान ही नहीं सकते। जिसको आप देख रहे हैं, उससे आप अलग हो जाते हैं, क्योंकि जो दिखायी पड़ रहा है, वह अलग होगा और जो देख रहा है, वह अलग होगा।

साक्षी को आप कभी नहीं देख सकते। आपके भीतर जो साक्षी है, उसको आप कभी नहीं देख सकते। उसको कौन देखेगा? जो देखेगा, वह आप हो जायेंगे और जो दिखायी पड़ेगा, वह अलग हो जायेगा। साक्षी आपका स्वरूप है। उसे आप देख नहीं सकते। क्योंकि देखनेवाला, आप अलग हो जायेंगे, तो फिर वही साक्षी होगा जो देख रहा है। जो दृश्य बन जायेगा, आब्जेक्ट बन जायेगा, वह फिर आत्मा नहीं रहेगी।

साक्षीभाव जो है, वह आत्मा में प्रवेश का उपाय है। असल में पूर्ण साक्षी स्थिति को उपलब्ध हो जाना स्वरूप को उपलब्ध हो जाना है।

साक्षी मन की कोई क्रिया नहीं है। और जो भी मन की क्रियाएं हैं, वे फिर ध्यान नहीं होंगी। इसलिए मैं जप को ध्यान नहीं कहता हूं। वह मन की क्रिया है। किसी मंत्र को स्मरण करने को ध्यान नहीं कहता हूं, वह भी मन की क्रिया है। किसी पूजा को, किसी पाठ को ध्यान नहीं कहता हूं; ये सब मन की क्रियाएं हैं। सिर्फ एक ही आपके भीतर रहस्य का मार्ग है, जो मन का नहीं है—वह साक्षी का है। जिस-जिस मात्रा में आपके भीतर साक्षी का भाव गहरा होता जायेगा, आप मन के बाहर होते जायेंगे। जिस क्षण साक्षी का भाव पूरा प्रतिष्ठित होगा, आप पायेंगे : मन नहीं है।

भारत से एक भिक्षु कोई चौदह सौ, पंद्रह सौ वर्ष पहले चीन गया, नाम था बोधिधर्म। जब वह चीन गया, उसके पहले उसकी ख्याति पहुंच गयी। सारे चीन में उसकी चर्चा हो गयी उसके पहुंचने के पहले। वैसा व्यक्ति था, अदभुत था। चीन का जो राजा था वू नाम का, वह उसका स्वागत करने सीमा पर दो मील चलकर आया। उसने स्वागत किया बोधिधर्म का और बोधिधर्म से पूछा, 'मैंने बहुत विहार बनवाये, मंदिर बनवाये, भगवान बुद्ध की हजारों-हजारों मूर्तियां बनवायीं, धर्म का प्रचार किया, धर्मशालाएं बनवायीं, लाखों भिक्षुओं को भोजन कराता हूं। मेरे इन सारे पुण्य कर्मों का क्या फल होगा?'

बोधिधर्म ने कहा, 'कुछ भी नहीं।' वह वू चौंक गया। जो भिक्षु आते थे, वे कहते थे, ऐसा करो, इससे बहुत लाभ है, बहुत पुण्य है। बोधिधर्म ने कहा, 'कुछ भी नहीं। और यह भी मत सोचना कि इनका कोई धर्म से संबंध है।' वह बहुत हैरान हुआ। उसने पूछा, 'फिर धर्म का किस बात से संबंध है?' तो बोधिधर्म ने कहा, 'तुमने मंदिर बनवाये, तुमने भिक्षुओं को भोजन कराया, या तुमने धन बांटा, या मूर्तियां खड़ी कीं। जब तुम यह सब कर रहे थे, तो तुम्हारे भीतर कोई जानता है कि यह सब हो रहा है, यह सब किया जा रहा है। वह जो साक्षी है, जो तुम्हारे भीतर जानता है, अगर उसमें प्रतिष्ठित हो जाओ, तो धर्म है। मंदिर बनाने में नहीं, मंदिर में पूजा करने में नहीं। वह जो मंदिर के बनाने को भी देखता है और जानता है, और मंदिर की पूजा को भी देखता है और जानता है...।'

कभी मंदिर में पूजा करते वक्त एकदम से खयाल करें, तो आपको पता चलेगा, आप पूजा भी कर रहे हैं और आपके भीतर एक बिंदु है, जो जान भी रहा है कि पूजा हो रही है, पूजा की जा रही है। रास्ते पर आप चल रहे हैं, चलते वक्त एकदम से खयाल करें, तो दिखायी पड़ेगा कि आप चल रहे हैं और आपके भीतर कोई जान भी रहा है कि आप चल रहे हैं। वह जो जान रहा है, वह आत्यंतिक रूप से अंतरस्थ केंद्र है। आपकी इनरमोस्ट, सबसे गहरी स्थिति है, जहां आप थे, जहां आपका स्वरूप है। बोधिधर्म ने कहा, वहां प्रतिष्ठित हों, तो धर्म में प्रतिष्ठित हैं। बाकी सब अच्छे काम हैं, धर्म से उनका कोई गहरा संबंध नहीं है।'

वह वू बोला कि 'अगर ऐसी बात है, तो मेरा चित्त बहुत अशांत रहता है, उसी के लिए मैंने यह धर्म के कार्य किये। मेरा चित्त कैसे शांत हो जाये, यह बतायें।' बोधिधर्म ने उसे देखा और कहा, 'कल सुबह चार बजे अंधेरे में आ जाना, तो तुम्हारे चित्त को शांत कर ही दूंगा।' ऐसा कहने वाला कभी कोई व्यक्ति उसे मिला नहीं था। उसने दुबारा पूछा, 'क्या मेरे चित्त को शांत कर ही देंगे?' बोधिधर्म ने कहा, 'अब दुबारा मत पूछो। सुबह चार बजे आ जाना। दुबारा पूछने की क्या बात है? मैंने कहा कि चित्त को शांत कर ही दूंगा। तुम जाओ।'

जब वह सीढ़ियां उतरने लगा, तो बोधिधर्म ने कहा, 'खयाल रखना, जब आओ, तो चित्त को साथ लेते आना। नहीं तो मैं शांत किसको करूंगा?' रास्ते में बादशाह सोचने लगा कि यह तो बड़ी गड़बड़ बात है, चित्त को साथ लेते आना! जब मैं आऊंगा, तो चित्त तो साथ आयेगा ही। इसमें क्या बात थी कहने की, यह कैसा पागल आदमी है! चित्त को साथ लेते आना, इसका क्या मतलब है? मैं आऊंगा, तो चित्त साथ आयेगा ही।

सुबह वह चार बजे क्या, तीन बजे ही आ गया। आते ही बोधिधर्म ने पूछा, 'लाये? चित्त को ले आये?' उसने कहा, 'आप कैसी बातें करते हैं। मैं आया हूं, तो चित्त तो आयेगा ही!' उसने कहा आंख बंद करो, 'खोजो, चित्त कहां है। मिल जाये, तो पकड़ो और कहो, यह है। और मैं उसी वक्त शांत कर दूंगा।'

उस फकीर के साथ उस अंधेरी रात में उस बादशाह ने आंख बंद की, भीतर खोजा और आंख थोड़ी देर बाद खोली, और कहा, 'वह मिलता नहीं।' तो बोधिधर्म ने कहा, 'जो मिलता ही नहीं, वह शांत हो गया। तुमने कभी खोजा ही नहीं।' और वह हैरान हुआ। बादशाह भीतर जब खोजने गया, तो वहां सब शांत!

असल में जब आप भीतर खोजने जायेंगे, तो सिर्फ साक्षी रह जायेगा, खोजनेवाला रह जायेगा। और अगर खोजने वाला बहुत प्रतिष्ठा से, बहुत शक्ति से अपने भीतर जाये, तो चित्त पाया ही नहीं जायेगा। चित्त हमारे सोये हुए होने का नाम है। चित्त हमारे भीतर साक्षी जितना मूर्च्छित है, उसका नाम है। चित्त कुछ है नहीं। साक्षी की ही मूर्च्छा का नाम चित्त है—मन। अगर साक्षी सजग हो जाये, मन नहीं पाया जायेगा।

जो मैंने प्रयोग कहा, वह कोई मन की क्रिया नहीं है। वह साक्षी भाव में धीरे-धीरे प्रवेश करने का बिलकुल प्राथमिक चरण है। उस भाव में जितने आप गहरे जायेंगे, पायेंगे कि चित्त है ही नहीं। जब साक्षी भाव पैदा होगा, तो आप पायेंगे, मन जैसी कोई चीज है नहीं। मात्र आत्मा है भीतर। यह साक्षीभाव मन का हिस्सा नहीं है, मन के बाहर है। असल में साक्षीभाव के सोये हुए होने का नाम मन है। और साक्षीभाव के जग जाने का नाम अ-मन है या आत्मा है। उस वक्त नो-माइंड है; उस वक्त कोई मन आपके भीतर नहीं रहता है।

पूछा है, भय क्या है? और भय-मुक्ति का उपाय क्या है? यह जो मैंने अभी कहा, साक्षी का सोया हुआ होना मन है। इसे और हम दो-तीन बातें करेंगे, तो समझ में आ सकेगा कि साक्षी का सोया हुआ होना क्या है?

यह जो साक्षी का सोया हुआ होना है, इससे मन पैदा हो जाता है। यानी वह सोया हुआ होना ही मन है। यह मन बड़ी छाया-अस्तित्व की चीज है, बड़ा शैडो एक्झिस्टेंस है इसका। इसकी कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। इसलिए मन हमेशा मिटने से डरा रहता है। घबड़ाहट लगी रहती है कि कब मिट जाये! उस मिटने के भय से, वह मिटने की जो संभावना है, आशंका है, उससे भय पैदा होता है। फियर पैदा होता है।

पूछा है कि भय क्या है?

जिस-जिस चीज को आप अपना होना समझे हुए हैं, वे सभी चीजें मरणधर्मा हैं। यह भय है। जिस-जिस चीज को आप अपना होना समझे हुए हैं कि यह मैं हूं, वे सभी मरणधर्मा हैं। भीतर प्रत्येक की मृत्यु का स्पष्ट बोध है। आप संपत्ति को समझे हुए हो कि संपत्ति मेरी है। लेकिन बहुत गहरे में हर एक व्यक्ति जानता है, संपत्ति मेरी नहीं है। क्योंकि आप नहीं थे, तब भी संपत्ति थी; आप नहीं होंगे, तब भी संपत्ति होगी। आप उसके मालिक हो नहीं सकते, लेकिन मालिक बने हैं। तो मालकियत झूठी है, इसका बहुत गहरे में बोध प्रत्येक को है। तो मालकियत खोने का डर पीछे लगा हुआ है। वह झूठी है। हर आदमी अपनी संपत्ति की सुरक्षा के लिए डरा हुआ है कि संपत्ति कहीं छूट न जाये। जिस यश को आप समझे हुए हैं मेरा है, बहुत गहरे में प्रत्येक व्यक्ति जानता है, यश मेरा नहीं है, वह छूट सकता है। किसी का दिया हुआ है, बिलकुल उधार है। अभी छीना जा सकता है। तो यश के बचाव के लिए आप भयभीत हैं।

जिस देह को आप समझते हैं कि यह मैं हूं, रोज चारों तरफ देखते हैं कि देह मिट जाती है। आप भी किसी तल पर जानते हैं कि देह मिट जायेगी। इसलिए देह के मिटने का भय लगा हुआ है। आप जिन-जिन चीजों के जोड़ हैं, उन सभी चीजों के विनष्ट होने का, उन सभी चीजों के पराये होने का, उन सभी चीजों के वास्तविक संपत्ति न होने का आपके भीतर थोड़ा-बहुत बोध है। वही बोध आपको भयभीत किये हुए है। उस बोध के कारण ही आप भयभीत हैं। उसी से फियर पैदा हो रहा है। जो ईडियट हो, जड़-बुद्धि हो, उसको कोई भय नहीं है। वह आग में हाथ डाल देगा। घर में आग लगी हो, वह बैठा रहेगा। तो कोई वह जड़-बुद्धि कोई परम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो गया है। असल में, बोध न होने से जो-जो चीजें मरणधर्मा हैं, उनका उसे पता ही नहीं चल रहा है, इसलिए उसे कोई भय नहीं है।

मनुष्य सबसे भयभीत प्राणी है। और भयभीत होने का कारण है, उसे बोध है। तो जो-जो चीज गलत है, उसकी सरकती हुई अनुभूति उसे होती रहती है कि यह गलत है। यह ठीक नहीं है, यह छूट जायेगी।

एक मुसलमान बादशाह हुआ। सुबह ही सुबह वह अपने दरबार में जाकर बैठा था कि एक फकीर भीतर आया। पहरेदारों ने रोकने की कोशिश की, तो उसने कहा कि 'कौन मुझे रोक सकता है? कोई इसका मालिक नहीं है, कि मुझे रोक सके।' वह इतना दबंग था फकीर, ऐसा प्रभावशाली था कि पहरेदार घबड़ाकर खड़े हो गये। ऐसा कोई आदमी नहीं आया था। उसने कहा, 'हट जाओ रास्ते से। कौन मुझे रोक सकता है? किसका है यह? यह किसी का भी नहीं।' पहरेदारों ने खबर दी कि ऐसा फकीर आया है, बड़ा प्रभावशाली है और वह कहता है, किसी का मकान नहीं है। कोई मुझे भीतर जाने से रोक नहीं सकता। राजा ने कहा,'उसे ले आओ।'

फकीर लाया गया। उसने राजा से कहा कि 'मैं इस सराय में कुछ दिन ठहरना चाहता हूं। कौन मुझे रोक सकता है?' उस राजा ने कहा, 'बिलकुल ही अशिष्ट बात बोल रहे हो। एक तो पहरेदारों के साथ तुमने दुर्व्यवहार किया, दूसरा अब तुम मेरे निवास को, मेरे महल को कहते हो सराय, धर्मशाला? शब्द वापस ले लो।' फकीर बोला, 'मैं अपने शब्द वापस ले लूं, जो कि बिलकुल सच हैं! नहीं, मैं तुमसे कहूंगा, अपने शब्द वापस ले लो। क्योंकि मैं इसके पहले आया, तो तुम यहां नहीं थे; तब कोई और था, जो इसका मालिक बना था। इस सिंहासन पर पहले भी यही झंझट हो चुकी है।' राजा ने कहा, 'वे कोई नहीं थे, मेरे पिता थे।' और उसने कहा कि 'उसके पहले भी मैं आया हूं और तब भी झंझट हो चुकी है। तब वे नहीं थे, कोई और थे।' राजा

ने कहा, 'वे उनके पिता थे।' और फकीर ने कहा, 'ऐसा मैं बहुत बार आया हूं। जब भी यहां आया, तो दूसरे आदमी को पाया हूं। मैं तुमसे पक्का कहता हूं कि जब मैं दुबारा आऊंगा, तब तुम नहीं रहोगे। तो मैं इसको सराय कहने लगा, क्योंकि यहां तो आदमी बदलते रहते हैं! यहां मालकियत किसी की नहीं। तुम अपना शब्द वापस ले लो कि यह निवास है। यह सराय है। यहां तुम आये हो, ठहरे हो, चले जाओगे।'

राजा ने सुना। उसने दरबारियों से कहा, 'मैं अपने शब्द ही वापस नहीं लेता, अपना जीवन भी वापस लेता हूं।' वह फकीर के पीछे हो गया। उसे दिखायी पड़ गया कि सराय है। वह निवास कभी नहीं था।

लेकिन सराय को अगर हम अपना निवास समझें, तो फियर होगा। चाहे हम ऊपर से कितने ही समझे रहें कि यह हमारा निवास है, लेकिन आप धर्मशाला में ठहरे हुए हैं और आप यह समझे रहें कितने ही कि मेरा मकान है, फिर भी भीतर किसी तल पर आप झुठला नहीं सकते। आप जानते हैं कि यह मकान नहीं है। यहां ठहरा हुआ हूं। घबराहट लगी रहेगी—कब निकल जाऊं। कब अलग कर दिया जाऊं! कब बेघर हो जाऊं! यह डर बना ही रहेगा, क्योंकि जहां आप ठहरे हुए हैं, वह घर है ही नहीं। फियर पैदा होता है, भय पैदा होता है। भय इसलिए पैदा होता है कि जहां घर नहीं है, वहां घर समझे हुए थे।

यह भय बुरा नहीं है। मेरी दृष्टि से जिसमें यह भय नहीं है, वही बात बुरी है। यह भय बुरा नहीं है, क्योंकि जड़-बुद्धि में यह भय नहीं होगा। इसलिए जितनी सतेज बुद्धि होगी, उतनी भयभीत होगी। क्योंकि सब तरफ उसे लगेगा, जहां-जहां पैर रखे हुए हैं, वहां जमीन है ही नहीं। उसे दिखायी पड़ेगा न, अंधा आदमी नहीं है। जिसके पास आंख है, बोध है, उसे हर चीज भयभीत करती हुई मालूम पड़ेगी। उसका जीवन धीरे-धीरे बिलकुल ही भय से भर जायेगा। वह कंपने लगेगा पत्ते की तरह। सब भयभीत हो जायेगा भीतर। लेकिन, इसी भय से अभय पैदा होगा। इसी बोध से—जब कि हर एक चीज उसे आश्वासन देने में असमर्थ हो जायेगी। जब कोई भी चीज उसे ऐसी नहीं रह जाएगी जो अभय दे सके। जिसको दे रही है अभय, वह नासमझ है।

एक आदमी दस लाख रुपये पकड़े बैठा है, सोचता है कि मैं फियरलेस हो गया। अब मुझे कोई भय नहीं है। वह पागल है। लेकिन जिसके पास बोध होगा, उसके पास दस लाख क्या, दस करोड़, दस अरब भी अभय नहीं दे सकते। उसे दिखायी पड़ेगा, यह मामला कितना ही मेरे पास हो, इससे भय मिटता नहीं है। बल्कि जितना ही होता जाता है, यह और, इसका होना भी नये भय का कारण हो जाता है—उसकी सुरक्षा, उसकी व्यवस्था। फिर भी वह सुरक्षित रहने वाला नहीं है।'

भय का बोध बुद्धि का लक्षण है। इसलिए भय कोई बुरी बात नहीं है। असल में बुरी बात इस जीवन में और जगत में कुछ भी नहीं है। और जिन-जिन को हम बुरा मानते हैं, उनसे ही उसके लिए मार्ग मिलते हैं, जिनको शुभ कहते हैं। अगर भय का बोध आपका पूरा हो जाये, अगर एंग्विश टोटल हो जाये, अगर घबराहट और संताप पूरा हो जाये, तो आपके जीवन में क्रांति हो जायेगी। आप उस अग्नि से दूसरे आदमी होकर पैदा हो जायेंगे। आपका नया जन्म हो जायेगा। क्योंकि जब आपको सब तरफ भय दिखायी पड़ने लगेगा स्पष्ट और कोई घर घर नहीं मालूम होगा, कोई अपना अपना नहीं मालूम होगा, कोई संपत्ति संपत्ति नहीं मालूम होगी, पैर के नीचे कोई भूमि नहीं मालूम होगी, जब ऐसा आप चारों तरफ भय से भर जायेंगे, उसी भय में बाहर का विश्वास चला जाता है। और भीतर आंख मुड़ती है। उसी भय में बाहर की आस्था खो जाती है और बाहर की

निष्ठा खो जाती है। तब आप भीतर खोजते हैं कि शायद यहां घर मिल जाये।

जब तक बाहर घर को समझते हैं कि मिल सकता है, तब तक आप भयभीत रहेंगे; क्योंकि घर कितना ही मिल जाये, बाहर घर हो नहीं सकता, क्योंकि है नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी है कि बाहर कोई घर नहीं है। कितना ही खोजें, मिल सकता नहीं है। भय भीतर बना ही रहेगा। हां, लेकिन अगर बाहर के सारे घर व्यर्थ मालूम हों, और भय पूरा हो जाये, तो भीतर प्रवेश होगा। और वहां घर है। उसके मिलते ही अभय पैदा हो जाता है। भीतर जो भूमि है, उस पर पैर पड़ते ही अभय पैदा हो जाता है। उसके पहले जिनको आप समझते हैं कि जिनमें कोई फियर नहीं है, समझते हैं बड़े बहादुर हैं, बड़े हिम्मतवर हैं, वे भी सब भयभीत हैं। उनके हाथ में तलवारें हैं। वे तलवारें भय का लक्षण हैं।

संपत्ति को इकट्ठा कर रहे हैं, संपत्ति के बल पर कहेंगे कि मुझे भय नहीं है, लेकिन संपत्ति को इकट्ठा करना भय का लक्षण है।

क्राइस्ट ने अपने शिष्यों को एक दिन कहा, 'कल की जो चिंता करता है, वह भयभीत है। क्योंकि वह डरा हुआ है कि कल क्या होगा। कल का डर है।' क्राइस्ट ने कहा, 'इन फूलों की तरह हो जाओ, जो खिलते हैं, मुरझा जाते हैं, लेकिन इन्हें कोई चिंता नहीं है।'

लेकिन फूलों को चिंता न होने को मैं कोई अच्छी बात नहीं मानता । बोध की कमी है वहां। फूल की भांति नहीं होना। यानी बोध हट जाये आपके भीतर, तो आप भी निश्चिंत हो जायेंगे। लेकिन उस तरह की निश्चिंतता अभय नहीं लायेगी। उस तरह की निश्चिंतता के पीछे भय बना ही रहेगा। इसलिए बड़े से बड़े लोग जिन्होंने अपनी बड़ी निश्चिंतता कर ली, बड़ी सिक्योरिटी कर ली, वे भी भीतर भयभीत बने रहते हैं।

चंगेज जब हिंदुस्तान को लूट-खसोटकर वापस लौट रहा था...हजारों आदमी काट दिये थे। जिस देश में गया, वहां हजारों लोगों को काट दिया। जिस राजधानी में गया, पहले जाकर दस हजार बच्चों के सिर कटवा देता था और अपने सैनिकों को कहता कि उनको भालों पर लगाकर एक जुलूस निकाल दो पूरे नगर में, ताकि लोग देख लें कि चंगेज आ गया। और समझ जायें कि कौन आ गया। रात को जहां से फौजें निकलती थीं, बगल के गांव में आग लगा देता था, ताकि रोशनी हो जाए; फौजों का रास्ता साफ हो जाए। लेकिन अपनी मौत से ऐसा भयभीत था कि रात-रात भर सो नहीं सकता था। बार-बार तलवार उठा लेता था। जरा ही खटका हो कि तलवार पर हाथ रख लेता था। रात सो नहीं सकता था, दिन में सोता था। कभी नहीं सोया रात में। दिन में सोता था, जब चारों तरफ नंगी तलवार लिए फौजी होते थे, तब वह सोता था। रात के अंधकार में, मान लो फौजियों को झपकी आ जाये, मान लो अंधेरे में कोई घुस आये, इसलिए रात को नहीं सो सकता था। अंधेरे से डरता था।

और ऐसे ही उसकी मौत हुई थी। जब हिंदुस्तान से लौट रहा था, एक रात को उसे ऐसा लगा, सपने में लगा और जो आदमी दिन भर हत्या करेगा, रात उसे मारे जाने का सपना देखना बहुत कठिन नहीं है। बहुत स्वाभाविक है। उसने देखा कि दुश्मन घुस आये हैं और उसे मारने की तलाश में हैं। वह नींद में उठा और भागा। बाहर जो उसका टेंट था, उसकी रस्सी से उसका पैर फंस गया और वह गिर पड़ा और घबराहट में मर गया।

ऐसा आदमी जिसने लाखों लोग मार दिये निर्ममता से, वह ऐसा भयभीत था। सिकंदर, नेपोलियन और हिटलर, इन्हें कोई बहादुर आदमी मत समझना। ये भयभीत लोग हैं। असल में ये दूसरे को मारकर अपने को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम इतने लोगों को मार सकते हैं, तो हमें कौन मार सकेगा? और कोई बात नहीं है। इसलिए जो जितना भयभीत होता है, उतने लोगों को मारने की कोशिश करेगा, दबाने की कोशिश करेगा। वह सेल्फ कांफिडेंस पैदा करना चाह रहा है—आत्मविश्वास, कि मैं इतने लोगों को मार सकता हूं तो मुझे कौन मारेगा? मरने का भय है। बहुत लोगों को मारकर, लाशों को बिछाकर वह यह विश्वास ले आता है, यह सिक्योरिटी पैदा कर लेना चाहता है, सुरक्षा, कि मुझे कोई नहीं मार सकता है। ये सब भयभीत लोग हैं।

इतिहास जिन लोगों के खून-खराबों से भरा हुआ है, वे दुनिया के सबसे ज्यादा भयभीत लोग थे। उनका भय जा नहीं सकता। बाहर की व्यवस्था से हिंसा पैदा होती है। भयभीत आदमी हिंसा करेगा, करवायेगा। उससे उसे विश्वास आता है कि मेरे भीतर भय नहीं है। वह विश्वास अपने को दिला रहा है। लेकिन भय भीतर बना रहता है।

आदमी राज्य जीत ले, बड़े पदों पर पहुंच जाये, यह तीव्र चेष्टा है। राजनीतिज्ञ बहुत भयभीत आदमी होता है। बड़े से बड़े पद पर पहुंचने की उसकी जो कोशिश है, वह इसी खयाल में है कि वहां पहुंचकर मैं निर्भय हो जाऊंगा। उसमें मुझे कोई भय नहीं रहेगा।

निश्चित ही, एक गांव का चपरासी है, और एक राष्ट्रपति है। सोचता है चपरासी, अगर मैं राष्ट्रपति हो जाऊं, फिर मुझे कोई भय नहीं है। राष्ट्रपति होने की जो कोशिश, या प्रीमियर होने की जो कोशिश, या प्रधान मंत्री होने की जो कोशिश, सत्ता को पाने की जो कोशिश है, वह अपने भीतर भय को झुठलाने की कोशिश है। लेकिन कितनी ही व्यवस्था कर लो, भय तो कहीं जा नहीं सकता। बाहर की कोई व्यवस्था भय को नष्ट नहीं करती, बल्कि एक नये भय को पैदा कर देती है कि जो व्यवस्था मिट जाती है, अब कहीं यह छूट न जाये। तो बड़े की चेष्टा शुरू होती है और नीचे जो पकड़ रखा है, उसे बचाये रखने की कोशिश शुरू होती है। और ऐसा हम भय से घिरते जाते हैं।

लेकिन यदि भीतर दृष्टि घूम जाये, तो अभय का स्थान मिल जाता है। क्योंकि वहां दिखायी पड़ता है : जो है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। वहां दिखायी पड़ता है : जो है, उसका कोई अंत नहीं है। वहां दिखायी पड़ता है : जो है, उसे छीना नहीं जा सकता। वहां जो संपदा मिलती है, वह नष्ट नहीं हो सकती है। यह जहां स्थिति स्पष्ट हो जाये, वहीं अभय शुरू हो जाता है।

पूछा है कि भय-मुक्ति का उपाय क्या है? उपाय मत पूछें, क्योंकि उपाय सारे लोग कर रहे हैं, भय-मुक्ति के ही उपाय कर रहे हैं। धन को इकट्ठा करने वाला भी, पद को इकट्ठा करने वाला भी, तलवार इकट्ठी करनेवाला भी, शरीर को मजबूत करनेवाला भी, ईश्वर का भजनकीर्तन करने वाला भी—सब भय-मुक्ति के उपाय कर रहे हैं।

भय-मुक्ति का उपाय मत पूछो, वह तो सारी दुनिया कर रही है। भय-मुक्ति का उपाय नहीं, भय के प्रति जागरण, भय के प्रति होश, कि भय है क्यों? क्या है उसके बुनियाद में कारण? और अगर कारण दिखायी पड़ जाये कि भय का कारण यह है कि अभय की जो भूमि है, उसमें हमारा प्रवेश नहीं है; और जो भय

की भूमि है, वहीं हम कोशिश कर रहे हैं कि अभय उपलब्ध हो जाये। अगर यह दिख जाये, तो परिवर्तन शुरू हो जाये। अगर भय का स्पष्ट कारण दिख जाये, उसकी कॉजलिटी दिखायी पड़ जाये, उसकी बुनियाद दिखायी पड़ जाये, तो आप अभय में प्रवेश करना शुरू कर पायेंगे।

भय को देखें और समझें कि वह क्यों है? बिना उसे समझे भय-मुक्ति के उपाय की कोशिश मत करें। और मेरा कहना है, जो समझ लेता है, उसे उपाय करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। जिसने समझ लिया है कि भय क्यों है, उसका भय गया। भय को खोजने से भय चला जायेगा। हम भय को तो खोजते नहीं, उपाय खोजते हैं उससे बचने का! और सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।

मुझे जैसा दिखायी पड़ता है, वह यही है कि जीवन में किसी चीज से बचने की कोशिश न करें, उसे जानने की कोशिश करें। भय कुछ बुरा नहीं है, उसे जानने की कोशिश करें। उसे जानने से ही क्रांति होती है।

दूसरा प्रश्न है : आपने मन और विचार की गति रोकने के लिए साधना बतायी। गीता ने आसक्तिरहित कर्म का तरीका बताया है, उसमें और इस तरीके में क्या फर्क है?

गीता को बीच में न लायें। मैं और आप काफी हैं। क्योंकि पक्का मत समझें कि जो आप समझते हैं गीता में लिखा है, वही गीता में लिखा हो। गीता को कृष्ण हुए बिना समझना असंभव है। अर्जुन समझता था, ऐसी मेरी धारणा नहीं है। जिस तल पर जो बात कही जाती है, उसी तल पर केवल समझी जा सकती है। यही वजह है कि गीता की हजारों टीकाएं हैं। कृष्ण कोई पागल तो थे नहीं कि उनकी एक ही बात में हजार-हजार मतलब रहे हों। एक ही आदमी के अगर एक बात में हजार मतलब हों तो उसको पागल होना चाहिए। उनका मतलब तो स्पष्ट एक ही रहा होगा। लेकिन हजारों टीकाएं हैं गीता पर। ये टीकाएं गीता पर नहीं हैं, अपने-अपने मन पर हैं। यह टीकाकार का मन है जो बोल रहा है।

और हममें ऐसा पागलपन रहा है कि हम अपने विचार को किसी बड़े आदमी के नाम पर थोप दें, तो हमें सुख मिलता है। हमें ऐसा लगता है कि विचार तो अब निश्चित ही ठीक होगा। हम पर तो खुद हमें विश्वास होता नहीं। हमें यह तो हम अपने विचार को कृष्ण पर थोप दें, तो फिर हमको धीरे-धीरे विश्वास आने लगता है कि जरूर ठीक होगा क्योंकि कृष्ण कह रहे हैं। कह हम ही रहे हैं।

ये सारी टीकाएं कृष्ण पर जो लिखी गयी हैं, ये अपने-अपने मन पर लिखी टीकाएं हैं, चाहे कोई भी लिखता हो। क्योंकि कृष्ण का मतलब तो गीता है। टीका उसका मतलब है, जो लिख रहा है। जब भी हम कोई किताब पढ़ते हैं, तो जाने-अनजाने टीका करते हैं। वह जो टीका है, हमारा भाव है, हमारा विचार है। इसलिए मैंने कहा कि गीता को अलग कर दें, मैं और आप काफी हैं।

मैंने जो कहा, जिस बात को मैंने सुबह आपको कहा, कल रात कहा, फिर कहूंगा, उसमें और अनासक्त कर्म के विचार में बुनियादी भेद है। मेरा कहना यह है कि अनासक्त कर्म किया नहीं जा सकता है; अनासक्त कर्म होता है। क्योंकि जब आप उसे करेंगे, तो उसमें आसक्ति आ जायेगी। जब आप चेष्टा करेंगे, तो वह कर्म आसक्त हो जायेगा। जब आप कोशिश करेंगे, यह कर्म मेरा अनासक्त हो, तो क्यों कोशिश करेंगे? आखिर

अनासक्त होने की वजह क्या है? वजह है कि मोक्ष पाना है। तो आसक्त हो गया।

अगर कोई चीज पानी है, तो वह आसक्त हो जायेगा। तो शांति पानी है, इसलिए अनासक्त कर्म करते हैं। तो अनासक्त कहां रहा? धन न पाना हो, यश न पाना हो, लेकिन शांति पानी है या परमात्मा पाना है! असल में जहां भी 'पाने' का भाव है, वहां कर्म अनासक्त नहीं होगा। तो आप सोच-सोच कर चाहें कि मैं अपने कर्म को अनासक्त कर लूं, तो आप गलती में हैं। सोचकर कभी कर्म अनासक्त हो ही नहीं सकता, क्योंकि सोचना तो आसक्ति का ही उपाय है।

तो मैं जो कह रहा हूं, अगर चित्त शांत हो, शांत चित्त से जो कर्म निकलता है, वह अपने आप अनासक्त होता है, वह करना नहीं होता। अनासक्त कर्म करने से चित्त कभी शांत नहीं होता, क्योंकि अनासक्त कर्म तो किया ही नहीं जा सकता। लेकिन चित्त यदि शांत हो जाये, तो जो कर्म निकलेगा, वह अनासक्त कर्म होगा, क्योंकि शांत चित्त से आसक्त कर्म निकल नहीं सकता।

तो सवाल आपके कर्म का बिलकुल भी नहीं है, क्योंकि कर्म महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण आप हो। और आप जैसे होते हो, वैसा कर्म निकलता है। तो आप अपने को तो बदलो न, और कर्म को अनासक्त करना चाहो, तो पागलपन है; वह तो हो ही नहीं सकता। कैसे होगा? यानी आपके भीतर तो कोई बदलाहट न हो और कर्म को अनासक्त करने की कोशिश चले, तो कर्म निकलता कहां से है? कर्म आपसे निकलता है। आप उसके मूल उद्‌गम हो। आप वही हो पुराने के पुराने और कर्म को अनासक्त करना चाहते हो, तो हो सकता है, कर्म अनासक्त दिखने लगे, लेकिन हो नहीं सकता। उसमें आसक्ति बनी रहेगी।

साधु भी जो कर रहा है, उसमें आसक्ति है। वह चाहे मोक्ष की हो, चाहे ईश्वर की हो। ये भी सब वासना के ही एक्सटेनशंस हैं, उसके ही विस्तार हैं। एक साधु चेष्टा में लगा है, उपवास में लगा है, सेवा कर रहा है, या कुछ और कर रहा है, इस सारे के पीछे एक वासना है कि चित्त शांत हो जाये, ईश्वर मिल जाये, आत्मा मिल जाये, मोक्ष मिल जाये; यह हो जाये, वह हो जाये; आवागमन से छुटकारा हो जाये। ये सब वासना के रूप हैं। ये सब डिजायर हैं। यह कर्म अनासक्त कैसे होगा?

अनासक्त कर्म तभी हो सकता है, जब भीतर चित्त इतना शांत हो। चित्त जिस मात्रा में शांत होगा, विलीन होगा, उसी मात्रा में कर्म से आसक्ति विलीन हो जायेगी। चित्त की अशांति ही आसक्ति का मूल उदगम है। इसलिए मैं कर्म को बदलने को नहीं कहता, कर्म को बदला ही नहीं जा सकता। वह तो ऐसा ही है कि एक आदमी वृक्ष के पास जाये और वृक्ष को तो कुछ न करे और कहे कि फूल इसमें बड़े आने चाहिए, छोटे आने चाहिए या ऐसा होना चाहिए या वैसा होना चाहिए। फूलों का विचार करे और वृक्ष की कोई फिक्र न करे। तो क्या होगा? अगर जोर जबरदस्ती करे, तो ऊपर से फूल लटका सकता है वृक्ष में जाकर, लेकिन वृक्ष में फूल ला नहीं सकता। क्योंकि वृक्ष में फूल कोई आते नहीं हैं एकदम से। वृक्ष की आखिरी नीचे जो जड़ है, वहां से फूल का बनना शुरू होता है। वह सारे वृक्ष की यात्रा करता है फूल, और फिर कहीं ऊपर आकर प्रकट होता है। जहां आपको दिखाई पड़ता है, वह तो केवल अभिव्यक्ति है, वह कोई निर्माण का स्थल नहीं है। निर्माण तो बड़े अंधेरे और बड़े अज्ञात में हो रहा है।

कर्म भी हमारे जीवन की अंतःसत्ता के फूल की भांति हैं। वहां वे बन नहीं रहे हैं; वहां तो प्रगट हो रहे

हैं। बन तो बहुत गहरे में रहे हैं, बहुत अंधेरे में, बहुत अज्ञात में, अदृश्य में। वहां वे तैयार हो रहे हैं। वहां आपको पता भी नहीं कि वहां क्या हो रहा है! वे प्रगट हो जाते हैं, तब आप कहते हैं, यह हो गया। एक आदमी ने हत्या कर दी, तो आप कहते हैं, उसने हत्या कर दी। हत्या करना इतनी आसान बात नहीं है। हत्या पैदा हो रही थी, बन रही थी, निर्मित हो रही थी। वर्षों से उसके भीतर तैयारी चल रही थी। उसकी चेतना उसका निर्माण कर रही थी। फिर एक दिन वह प्रकट हुई। जब प्रकट हुई तब आपने देखा। आप समझते हैं, एक्शन वहीं हुआ। वहां नहीं हुआ; वहां प्रकट हुआ केवल। वह पीछे से चल रहा था। हो सकता है, अनंत जन्मों से चल रहा हो। और कर्म को बदलने की जो सोच रहा है, वह बिलकुल पागल है। वह तो अभिव्यक्ति को बदलने की सोच रहा है, जहां कि चीजें प्रकट हो रही हैं। वहां कुछ नहीं होगा।

एक घर में से ऊपर छप्पर में धुआं निकल रहा हो और आप जा-जाकर खपड़ों पर उसके धुएं को रोकने की कोशिश कर रहे हैं कि धुआं नहीं निकलने देना है अपने घर में से और घर में नीचे आग जल रही हो, उसकी कोई फिक्र न हो! उसको आप धुएं को इधर से रोकेंगे, वह दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जायेगा। उसे कैसे दबायेंगे, उसे कहां भेजेंगे? भीतर आग बुझानी चाहिए।

कर्म महत्वपूर्ण नहीं है...अंतस, अंतःकरण! कर्म तो केवल ऊपर निकलने वाला धुआं है। वह तो खबर देता है कि भीतर क्या है; और कुछ नहीं। तो भीतर की स्थिति बदलनी चाहिए। वह अगर बदल जाये, तो बाहर की अभिव्यक्ति अपने आप बदल जायेगी। लेकिन हम सारे लोग अभिव्यक्ति पर जोर देने वाले हो गये। धीरे-धीरे हजारों वर्षों से हमने यही समझने की कोशिश की कि कर्म को अच्छा करो। व्यक्ति को नहीं, कर्म को!

यह बात बिलकुल ही गलत है। अंतस को अच्छा होना चाहिए, आचरण अपने आप अच्छा होगा। लेकिन हम कहते हैं, आचरण अच्छा करो। हमारी यह भ्रांति है कि आचरण अच्छा होगा, तो अंतस अच्छा हो जायेगा। आचरण बिलकुल ऊपरी चीज है, उसका कोई मूल्य ही नहीं है। मूल्य तो अंतस का है, वहीं से निकलता है।

तो आप मूल को बिना बदले ऊपर के आवरण को बदलने की कोशिश में लगे हैं, तो धोखा होगा, पाखंड होगा। आचरण आप बदल सकते हैं चेष्टा करके, अंतस वही रहा आयेगा। एक राजनीतिक साधु हो सकता है, कोई कठिनाई नहीं है। वेश बदल लेगा। राजनीति कैसे जायेगी? कपड़े बदल लेगा, सिर घुटा लेगा, रंगे हुए कपड़े पहन लेगा, लेकिन भीतर का अंतस कैसे बदलेगा? अंतस तो वही रहेगा। वह साधु हो जायेगा, लेकिन फिर साधुओं से प्रतिस्पर्धा चलने लगेगी, काम्पिटीशन वहां आ जायेगा। मैं एक बड़ा साधु हो जाऊंगा, दूसरा साधु छोटा हो जाये। फिर साधुओं से लड़ने लगेंगे।

साधुओं को देखें करीब जाकर, तो पायेंगे कि सारे पोलिटीशियंस हैं, सब राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने कपड़े बदल लिए हैं, आचरण में व्यवस्था ऊपर की कर ली है, भीतर का चित्त वही का वही है। दो राजनीतिज्ञ एक-दूसरे से मिलने को राजी हो जायेंगे, दो साधु मिलने को राजी नहीं होते। क्योंकि यह डर लगा रहता है कि पहले कौन नमस्कार करेगा! वे दो मिलेंगे, तो पहले कौन नमस्कार करेगा! अगर मिल गये, तो ऊपर कौन बैठेगा, नीचे कौन बैठेगा!

यह जो चित्त है, इसको बिना बदले सब धोखा और पाखंड हो जाता है। सारी दुनिया में जो हिपोक्रेसी है, जो पाखंड है, वह इसीलिए है कि हम आचरण को बदलने की कोशिश करते हैं, अंतस की फिक्र नहीं करते। दुनिया जो पाखंड से भर गयी है, उसका और कोई कारण नहीं है। उसका कुल कारण इतना है कि आचरण बदलने पर हम जोर देते हैं। हम बच्चे से कहते हैं, झूठ मत बोलो। हम उसको कह रहे हैं, अपने आचरण को बदलो, हम बच्चे से कहते हैं : देखो बेईमानी मत करना! हम उससे कह रहे हैं, अपना कर्म ठीक रखना। यह बात ही नहीं कह रहे कि अपने अंतस को ठीक बनाना। हम जो बता रहे हैं, वह कर्म को ठीक करने के लिए बता रहे हैं। अंतस तो वही होगा। कर्म को बदलने से पाखंड पैदा होगा, धोखा पैदा होगा।

और अगर वह व्यक्ति बहुत ईमानदार हो, जिसको कहते हैं सिंसियर हो, तो वह पागल हो जायेगा। क्योंकि उसका अंतस विपरीत, उसका आचरण विपरीत। जितनी दुनिया में सभ्यता बढ़ती है, उतने पागल बढ़ते जाते हैं। उसका कोई और कारण नहीं है। उसका एक ही कारण है कि अगर कोई ईमानदारी से आचरण को बदलने की कोशिश करे, बिना अंतस बदले, तो पागल होना सुनिश्चित है। बच ही नहीं सकता। बच कैसे सकता है? क्योंकि भीतर से आयेगा धुआं और बाहर लगायेगा फूल! भीतर से आयेगी गंदगी और बाहर से करेगा व्यवस्था सौंदर्य की, तो कितनी दिक्कत में नहीं पड़ जायेगा? कितना टैंशन नहीं पैदा हो जायेगा! कैसे यह चलेगा?

और इसीलिए मेरी दृष्टि में कर्म का, आचरण का, सिवाय सूचक होने के और कोई मूल्य नहीं है। वह खबर देता है कि आपका अंतस कैसा है। अगर आपके आचरण में झूठ आता है, तो झूठ को बदलने की फिक्र मत करिये। पहचानिये कि आपका अंतस झूठ को पैदा करने में समर्थ है। अंतस को बदलने की फिक्र करिये। यह केवल खबर हुई। यह तो खबर दे दी गयी आपके लिए।

एक आदमी आये, मुझे खबर दे कि तुम्हारे घर में आग लगी है और मैं उस आदमी पर पानी डालने लगूं कि चलो आग को बुझा दूं! तो मुझे लोग पागल कहेंगे। उसने केवल खबर दी है कि घर में आग लगी है, तुम उसी पर पानी डाल रहे हो! इससे आग घर की थोड़े ही बुझेगी। वह आदमी भी मर सकता है उलटा। लेकिन यह हमें दिखता है पागलपन। कर्म जो हैं आपके, आपके अंतस की खबर देने वाले हैं कि मेरे भीतर आग लगी है। आचरण में, कर्म में झूठ आ रहा है, बेईमानी आ रही है—खबर ला रहा है कर्म।

मेरी दृष्टि में कर्म जो है, संदेशवाहक है; आचरण जो है खबर देनेवाला है। उसी को हम ठंडा करने लगते हैं कि आचरण को ठीक करो, कर्म को ठीक करो। न,वह तो गलती हो गयी। खबर को समझकर लें और खबर के पीछे जायें कि अंतस में क्या हो रहा है, जिससे कि झूठ आचरण तक आ रहा है। अंतस में परिवर्तन के उपाय हैं। अंतस में परिवर्तन का उपाय धर्म है। और आचरण में परिवर्तन का उपाय नीति है।

नीति और धर्म बुनियादी रूप से भिन्न बातें हैं। धार्मिक आदमी तो अनिवार्य रूप से नैतिक होगा। जिसका अंतस बदला, उसका आचरण तो बदल जायेगा। लेकिन नैतिक मनुष्य अनिवार्य रूप से धार्मिक नहीं होता है क्योंकि आचरण बदलना भी एक बात है, अंतस का बदलना जरूरी नहीं है। इसलिए नैतिक मनुष्य बड़े कष्ट में जीता है। सज्जन जिनको हम कहते हैं, वे इतने कष्ट में जीते हैं, जितने दुर्जन नहीं जीते हैं। क्योंकि सारी तकलीफ ही यह है कि अंतस उनके खुद ही विरोध में खड़ा है और आचरण उनमें विपरीत है। भीतर मन

तो झूठ बोलने का होता है, वे सच बोलना चाहते हैं, या सच बोलने की कोशिश करते हैं। उनका जीवन एक कांफ्लिक्ट और द्वंद्व हो जाता है। इसलिए सज्जन बड़े कष्ट में जीता है। उससे तो दुर्जन कम कष्ट में जीता है। कम से कम उसके आचरण में और अंतस में एक समानता होती है। दुर्जन, अपराधी शांति में जीता है। उसके अंतस और आचरण में समानता होती है। सज्जन बड़े कष्ट में जीता है। उसके आचरण और अंतस में विरोध होता है।

संत भी शांति में जीता है। उसके भी अंतस में और आचरण में समानता होती है। इसलिए संतों में और अपराधियों में एक तरह की समानता है। समानता यही है कि उन दोनों के अंतस और आचरण समान होते हैं। अपराधी के मन में जो बुराई उठती है, उसके आचरण में प्रकट होती है। संत के मन में बुराई उठती ही नहीं, भलाई ही उठती है। वह उसके आचरण में प्रकट होती है। भेद भलाई और बुराई का होता है। वैसे संत और अपराधी समान होते हैं।

सज्जन बड़ा उपद्रव में अटका होता है। वह त्रिशंकु होता है, वह दोनों के बीच में अटका रहता है। उसके अंतस में तो अपराधी बैठा रहता है। और आचरण में साधु बैठा रहता है। सारी गड़बड़ हो जाती है। उसके भीतर बड़ा टैंशन, बड़ा तनाव, बड़ी परेशानी पैदा होती है। उस परेशानी से बचने के दो ही उपाय होते हैं। या तो वह पाखंडी हो जाये, यानी वह दिखाये कुछ, वस्तुतः करे कुछ। तो उसके भीतर थोड़ी शांति आती है। मतलब वह अपराधी के करीब आ जाता है। किसी भांति अपराधी के निकट पहुंच जाता है। और या फिर वह पागल हो जाये। उसे बोध ही न रहे कि वह क्या कर रहा है, क्या नहीं कर रहा है; और क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है। उस हालत में वह अपराधी के करीब पहुंच जाता है। तीसरा रास्ता यह है कि वह अंतस में क्रांति कर ले और संत के करीब पहुंच जाये।

मेरा जोर अंतस की क्रांति पर है, ताकि आचरण की क्रांति हो सके। आचरण की क्रांति पर मेरा जोर नहीं है, क्योंकि उससे अनिवार्य रूपेण अंतस की क्रांति नहीं होती है। इस पर हम और गहरे से विचार कर सकते हैं।

साधना शिविर, तुलसीश्याम, सौराष्ट्र; दिनांक 4 फरवरी ,1966

दूसरा प्रवचन

ध्यान का द्वार : सरलता

जिसे परमात्मा के दर्शन शुरू हो जायेंगे, वह एक पक्षी का गीत सुनेगा, तो उस गीत में भी उसे परमात्मा की वाणी सुनायी पड़ेगी। वह एक फूल को खिलते देखेगा, तो उस फूल के खिलने में भी परमात्मा की सुवास, परमात्मा की सुगंध उसे मिलेगी। उसे चारों तरफ एक अपूर्व शक्ति का बोध होना शुरू हो जाता है। लेकिन यह होगा तभी, जब मन हमारा इतना निर्मल और स्वच्छ हो कि उसमें प्रतिबिंब बन सके, उसमें रिफ्लेक्शन बन सके।

तुमने देखा होगा झील पर कभी जाकर। अगर झील पर बहुत लहरें उठती हों तो आकाश में चांद हो, तो

फिर झील पर चांद का कोई प्रतिबिंब नहीं बनता। और अगर झील बिलकुल शांत हो, उसमें कोई लहर न उठती हो, दर्पण की तरह चुप और मौन हो, तो फिर चांद उसमें दिखायी पड़ता है। और जो चांद झील में दिखायी पड़ता है, वह उससे भी सुंदर होता है, जो ऊपर आकाश में होता है।

प्रकृति चारों तरफ फैली हुई है, लेकिन हमारा मन दर्पण की भांति नहीं है, इसलिए उसके भीतर उस प्रकृति की कोई छवि नहीं उतरती, कोई चित्र नहीं बनते हैं। और तब हम वंचित हो जाते हैं उसे जानने से, जो हमारे चारों तरफ मौजूद है।

लोग पूछते हैं, तुमने भी प्रश्न पूछे हैं, कि ईश्वर है या नहीं? यह वैसे ही है? जैसे कोई मछली पूछे कि सागर कहां है? समुद्र कहां है? तो उस मछली को हम क्या कहेंगे? उसको कहेंगे कि तुम्हारे चारों तरफ जो है, वह सागर ही है। तो मछली कैसे देख सकेगी? जब हम पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं, तो उसका मतलब यह हुआ कि हमारे पास ईश्वर को देखने वाला दर्पण नहीं है अन्यथा ईश्वर तो चारों तरफ मौजूद है। लेकिन हमारे भीतर दर्पण मौजूद नहीं है, इसलिए कठिनाई है।

कैसे हमारा मन दर्पण बन जाये, थोड़ी-सी बातें इस संबंध में मैंने तुमसे की हैं, आज और दो-तीन सूत्रों पर तुमसे बात करूं। अगर इन सूत्रों का थोड़ा प्रयोग करो, तो कोई कठिनाई नहीं कि तुम भी एक निर्मल चित्त को उपलब्ध हो जाओ। और एक शांत मन को उपलब्ध हो जाओ। और फिर उस शांत मन में उन सारी चीजों के प्रतिबिंब बनें जो परमात्मा की ओर इशारा करती हैं।

पहला सूत्र है 'सरलता'। मनुष्य की सभ्यता जितनी विकसित हुई है, मनुष्य उतना ही जटिल, कठोर और कठिन होता गया है। सिम्पलीसिटी, सरलता जैसी कोई भी चीज उसके भीतर नहीं रह गयी है। उसका मन अत्यंत कठोर और धीरे-धीरे पत्थर की भांति, पाषाण की भांति सख्त होता गया है। और जितना हृदय पत्थर की भांति कठोर हो जायेगा, उतनी ही कठिन है बात; उतना ही जीवन में कुछ जानना कठिन है, मुश्किल है। सरल मन चाहिए। कैसे होगा सरल मन?

सरल मन की जो पहली इ□ट है, जो पहले आधार है, जो पहली बुनियाद है, वह कहां से रखनी होगी? आमतौर से तो जीवन में हम जैसे-जैसे उम्र बड़ी होती है, कठोर ही होते चले जाते हैं। और यही तो वजह है...तुमने सुना होगा बूढ़े को भी यह कहते हुए कि बचपन के दिन बहुत सुखद थे। बचपन बहुत आनंद से भरा था। बचपन बहुत आनंदपूर्ण था। तुम्हें भी लगता होगा। अभी यों तो तुम्हारी उम्र ज्यादा नहीं है, लेकिन तुम्हें भी लगता होगा कि जो दिन बीत गये बचपन के, वे बहुत आनंदपूर्ण थे। और धीरे-धीरे उतना आनंद नहीं है। क्यों? यह तुमने सुना तो होगा, लेकिन विचार नहीं किया होगा कि बचपन के दिन इतने आनंदपूर्ण क्यों होते हैं?

बचपन के दिन इसलिए आनंदपूर्ण हैं कि बचपन के दिन सरलता के दिन हैं। हृदय होता है सरल, इसलिए चारों तरफ आनंद का अनुभव होता है। फिर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, हृदय होने लगता है कठिन और कठोर। फिर आनंद क्षीण होने लगता है। दुनिया तो वही है— बूढ़ों के लिए भी वही है, बच्चों के लिए भी वही है। लेकिन बच्चों के लिए चारों तरफ आनंद की वर्षा मालूम होती है। मौज ही मौज मालूम होती है। सौंदर्य ही सौंदर्य मालूम होता है। छोटी-छोटी चीज में अदभुत दर्शन होते हैं। छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर को भी बच्चा बीन

लेता है और हीरे-जवाहरातों की तरह आनंदित होता है। क्या कारण है? कारण है, भीतर हृदय सरल है—जहां हृदय सरल है, वहां कंकड़-पत्थर भी हीरे-मोती हो जाते हैं। और जहां हृदय कठोर है, वहां हीरे-मोती के ढेर लगे रहें, तो कंकड़-पत्थरों से ज्यादा नहीं होते।

जहां हृदय सरल है, वहां छोटे से फूल में अपूर्व सौंदर्य के दर्शन होते हैं। जहां हृदय कठिन है, वहां फूलों का ढेर भी लगा रहे, तो उनका कहीं भी दर्शन नहीं होता। जहां हृदय सरल है; छोटे से झरने के किनारे भी बैठकर अदभुत सौंदर्य का बोध होता है। और जहां हृदय कठिन है, वहां कोई कश्मीर जाये, या स्विटजरलैंड जाये, या और सौंदर्य के स्थानों पर जाये, तो वहां भी उसे कोई सौंदर्य का बोध नहीं होता है। वहां भी उसे कोई आनंद की अनुभूति नहीं होती।

लेकिन बूढ़े लोग यह तो कहते हैं कि बचपन के दिन सुखद थे, लेकिन यह विचार नहीं करते कि क्यों सुखद थे? अगर इस बात पर विचार करें, तो पता चलेगा, हृदय सरल था, इसलिए जीवन में सुख था। तो अगर बुढ़ापे में भी हृदय सरल हो, तो जीवन में बचपन से भी ज्यादा सुख होगा। होना भी यही चाहिए। यह तो बड़ी उल्टी बात है कि बचपन के दिन सुखद हों और वह सुख धीरे-धीरे कम होता जाये, यह तो उल्टी बात हुई। जीवन में सुख का विकास होना चाहिए। जितना सुख बचपन में था, बुढ़ापे में उससे हजार गुना ज्यादा होना चाहिए, क्योंकि इतना जीवन का अनुभव, इतना विकास, इतनी समझ का बढ़ जाना, सुख का भी बढ़ना होना चाहिए।

लेकिन होती बात उल्टी है। बूढ़ा आदमी दुखी होता है। और बच्चा सुखी होता है। इसका अर्थ है कि जीवन की गति हमारी कुछ गलत है। हम जीवन को ठीक से व्यवस्था नहीं देते। अन्यथा वृद्ध व्यक्ति को जितना आनंद होगा, उतना बच्चे को क्या हो सकता है? यह तो पतन हुआ। बचपन में सुख हुआ और बुढ़ापे में दुख हुआ, यह तो पतन हुआ। हमारा जीवन नीचे गिरता गया; बजाय बढ़ने के, जीवन नीचे गिरा! बजाय ऊंचा होने के, हम पीछे गए। यह तो उल्टी बात है। अगर ठीक-ठीक मनुष्य का विकास हो, तो बुढ़ापे के अंतिम दिन सर्वाधिक आनंद के दिन होंगे—होने चाहिए। और अगर न हों, तो जानना चाहिए कि हम गलत ढंग से जीये। हमारा जीवन गलत ढंग का हुआ।

अगर किसी स्कूल में ऐसा हो कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आयें, वे तो ज्यादा समझदार हों और वे कालेज छोड़कर निकलें, तो कम समझदार हो जायें! तो उस कालेज को हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, यह तो पागलखाना है! होना तो यह चाहिए कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आयें, बच्चे आयें, तो समझ बहुत कम हो। जब वे कालेज को छोड़ें, स्कूल को छोड़ें, तो उनकी समझ और बढ़ जानी चाहिए। जीवन में जो बच्चे आते हैं, वे ज्यादा सुखी मालूम होते हैं और जो बूढ़े जीवन को छोड़ते हैं, वे ज्यादा दुखी हो जाते हैं। तो यह तो बहुत उल्टी बात हो गयी। इस उल्टी बात में हमारे हाथ में गलती होगी, कुछ कसूर होगा।

सबसे बड़ा कसूर है, सरलता को हम खो देते हैं, कमाते नहीं। सरलता कमानी चाहिए, सरलता बढ़नी चाहिए, गहरी होनी चाहिए, विस्तीर्ण होनी चाहिए। जितना हृदय सरल होता चला जायेगा, उतना ही ज्यादा जीवन में—इसी जीवन में, सुख की संभावना बढ़ जायेगी। कैसे चित्त सरल होगा, मन कैसे सरल होगा, और कैसे कठिन हो जाता है—इन दो बातों पर विचार करना जरूरी है।

उन लोगों का मन सर्वाधिक कठिन हो जाता है, जिनके भीतर अहंकार का भाव जितना ज्यादा होता है। जितना उन्हें लगता है कि मैं कुछ हूं, जिन्हें समबडी होने का भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं कुछ खास हूं, मैं कुछ हूं। अहंकार जिनमें, ईगो जिनमें बहुत तीव्र हो जाती है, जिनमें दंभ बहुत गहरा हो जाता है, उनका हृदय कठोर होता चला जाता है। जिनके भीतर अहंकार का भाव जितना कम होता है, उनका हृदय उतना ही सरल होता है। बच्चे में कोई अहंकार नहीं होता, इसलिए वह सरल है।

क्राइस्ट से किसी ने एक बार पूछा...वे एक बाजार में खड़े थे। कुछ लोग उन्हें घेर कर खड़े हुए थे; उनसे कुछ बातें पूछ रहे थे। तभी उनसे किसी ने पूछा कि 'परमात्मा के राज्य में कौन लोग प्रवेश कर सकेंगे?' तो क्राइस्ट ने एक छोटे से बच्चे को उठाया और कहा, 'जिनके हृदय इस बच्चे की भांति होंगे, वे ही केवल परमात्मा के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं।' 'जिनके हृदय बच्चों की भांति होंगे', लेकिन हम तो सभी बच्चों के हृदय खो देते हैं, धीरे-धीरे खो देते हैं क्योंकि हमारे भीतर एक अहंकार पैदा हो जाता है कि मैं कुछ हूं। लगने लगता है कि मैं कुछ हूं। अगर हम धन वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं धनी हूं। अगर हम बहुत पद वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं कुछ हूं—विशिष्ट, और लोगों से भिन्न। अगर एक व्यक्ति अच्छे कपड़े पहनता है, तो सोचता है मैं कुछ हूं। अगर एक व्यक्ति ज्यादा शिक्षा पा लेता है और उपाधियां उपलब्ध कर लेता है, तो सोचता है, मैं कुछ हूं!

यह 'मैं कुछ' होने का भाव जितना तीव्र होता जाता है उतना ही हृदय कठोर होता चला जाता है। जबकि आश्चर्यजनक बात यह है कि मनुष्य की शक्ति क्या है, मनुष्य की सामर्थ्य क्या है? कुछ होने का बोध कितना गलत है! अगर विचार करो तो दिखायी पड़ेगा! जैसे तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम क्यों पैदा हुए। तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम क्यों मर जाओगे। तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम्हारी जो श्वास बाहर गयी है, अगर वह भीतर न जायेगी, तो तुम्हारा क्या वश है उसके ऊपर! श्वास पर भी हमारा कोई वश नहीं है, कोई शक्ति नहीं, कोई ताकत नहीं है। फिर भी हम सोचते हैं, मैं कुछ हूं।

क्या हमारी सामर्थ्य है? कितनी हमारी शक्ति है? मनुष्य का बल कितना है? अगर हम जीवन को देखें, तो ज्ञात होगा; हमारा कोई भी तो बल नहीं है। बहुत छोटी-सी सीमित सामर्थ्य है। उसी सामर्थ्य में हमारे भीतर दंभ और अहंकार पैदा हो जाता है। समझेंगे तो ज्ञात होगा कि हम ना कुछ हैं। जैसे हवा में उड़ते हुए पत्ते होते हैं, वैसी हमारी स्थिति है। पैदा हुए, ज्ञात नहीं क्यों! पैदा होने में किसी ने पूछा नहीं कि पैदा होना है या नहीं! तुम्हारा कोई चुनाव, तुम्हारी कोई इच्छा काम नहीं की। मरते वक्त भी कोई पूछेगा नहीं। जीवन की क्रिया में भी तुम्हारा कोई हक नहीं है। जिस दिन श्वास आनी बंद हो जायेगी, तुम चाहो तो भी श्वास आ नहीं सकती। अगर मनुष्य के हाथ में यह होता कि वह जब तक चाहे श्वास ले सकता, तो कोई आदमी मरता नहीं। और कितना छोटा-सा जीवन है और हमारे हाथ में क्या है?

एक छोटी-सी घटना कहूं, उससे मेरी बात समझ में आये कि हमारे हाथ में करीब-करीब कुछ भी नहीं है। लेकिन फिर भी हमको यह वहम पैदा होता है कि मैं कुछ हूं और उससे हम कठोर हो जाते हैं।

बड़े से बड़ा धनी आदमी, जिसके पास कितनी ही संपत्ति हो, जब मृत्यु उसके द्वार खड़ी हो जाती है, तो उसे पता चलता है कि मेरी कोई ताकत नहीं। बड़े से बड़ा सम्राट, जिसके पास बहुत शक्ति हो, जिसने दुनिया

में न मालूम कितने लोगों की हत्या की हो, जब मौत उसके द्वार खड़ी हो जाती है, तो पाता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। अब तक किसी मनुष्य को भी इस वहम को कायम रखने का कोई कारण नहीं मिला कि उसकी कोई शक्ति है, कि वह कुछ है। एक घटना मैं तुम्हें कहूं।

एक बहुत बड़े राजमहल के निकट कुछ थोड़े से बच्चे खेल रहे थे। एक बच्चे ने पत्थर की ढेरी में से एक पत्थर उठाया और राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। वह पत्थर अपने पत्थर की ढेरी से ऊपर उठा; बच्चे ने फेंका तो पत्थर ऊपर उठा। उस पत्थर ने, नीचे जो पत्थर पड़े थे उनसे कहा कि 'मित्रो, मैं आकाश की तरफ जा रहा हूं!' बात ठीक ही थी। गलत कुछ भी न था। जा ही रहा था। नीचे के पड़े पत्थर देख रहे थे। उनके वश के बाहर था कि वे भी जाएं। इसलिए इस पत्थर की विशिष्टता को स्वीकार करने में—अस्वीकार करने का कोई कारण भी न था, स्वीकार करना ही पड़ा।

वह पत्थर ऊपर उठता गया। वह जाकर कांच की खिड़की से टकराया महल के। कांच टूटकर चकनाचूर हो गया। उस पत्थर ने जोर से कहा कि 'मैंने कितनी बार कहा कि मेरे रास्ते में कोई न आये, नहीं तो टूटकर चकनाचूर हो जायेगा!' यह भी बात ठीक ही थी। कांच टूट ही गया था। टुकड़े-टुकड़े हो गया था। पत्थर का यह गरूर भी ठीक ही था कि 'मैंने कहा है कि मेरे रास्ते में जो आयेगा, वह टूट जायेगा।

फिर पत्थर भीतर गिरा। वहां ईरानी कालीन बिछा हुआ था, उसके ऊपर गिरा। उस पत्थर ने मन में कहा, 'बहुत थक गया। एक शत्रु का भी सफाया किया, अब थोड़ी देर विश्राम कर लूं!' उसने विश्राम भी किया। लेकिन उस महल के नौकर को खबर पड़ी और कांच के फूटने की आवाज पहुंची। वह भागा हुआ आया। उसने पत्थर को उठाकर वापस खिड़की से नीचे की तरफ फेंका। जब वह पत्थर वापस लौटने लगा, तब उसने कहा, 'मित्रों की मुझे बहुत याद आती है, अब मुझे वापस चलना चाहिए।' वह नीचे गया और उस ढेरी के ऊपर वापस गिरा—अपने पत्थरों की ढेरी पर। उसने पत्थरों से कहा, 'मित्रो! बड़ी अदभुत यात्रा रही, बड़ी अच्छी यात्रा रही।'

खाली, पवित्रतम, शुद्धतम व्यक्तित्व को जानकर ही व्यक्ति जीवन में आनंद को, अमृत को उपलब्ध हो सकता है। उसे हम जान लें, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है, उसका फिर कोई अंत नहीं है, उसकी कोई समाप्ति नहीं है। उसे हम जान लें, उसके जानने के बाद कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं है, कोई अपमान नहीं है। उसे हम जान लें, फिर जीवन में कोई विषमता नहीं, समता है। फिर जीवन में शांति है; फिर जीवन में कुछ अदभुत है, जिसे शब्दों में कहना कठिन है।

लेकिन उसे जानने के लिए सरल होना जरूरी है। और सरल होने के लिए जो-जो झूठ हमने ओढ़ रखे हैं, उन सबको विदा कर देना जरूरी है। जो-जो अभिनय हमने ओढ़ रखे हैं, वे सब समाप्त कर देने जरूरी हैं। झूठा व्यक्तित्व टूट जाये तो ही सत्य का अनुभव हो सकता है। और अगर यह बचपन से स्मृति हो और बहुत छोटी उम्र से खयाल में हो, फिर हम झूठे व्यक्तित्व को ओढ़ने से भी बच सकते हैं।

तुम खुद खयाल करोगे, कितनी बातें हम झूठी ओढ़े रखते हैं, कितनी बातें! हम जैसा होते हैं, वैसा हम कभी बताते नहीं। हम जैसे नहीं होते हैं, वैसा हम बताने की कोशिश करते हैं। हम जितने सुंदर नहीं हैं, उतने सुंदर दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने सच्चे नहीं हैं, उतने सच्चे दिखने की कोशिश करते हैं। हम

जितने ईमानदार नहीं हैं, उतने ईमानदार दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने प्रेमपूर्ण नहीं हैं, उतने प्रेमपूर्ण दिखने की कोशिश करते हैं।

तब क्या होगा? तब इस कोशिश में, झूठ धीरे-धीरे हमारे चारों तरफ लिपटता चला जायेगा और हम जो नहीं हैं, वही हमें ज्ञात होने लगेगा कि हम हैं। निरंतर के प्रयास से, झूठ को ओढ़ने से ऐसा लगने लगेगा कि हम हैं। और तब भ्रांति हो जायेगी। और तब भीतर पहुंचना कठिन हो जायेगा। अगर छोटी उम्र से ही यह बोध रहे कि मैं जो हूं, उससे भिन्न न मुझे दिखायी पड़ना चाहिए, न मुझे कोशिश करनी चाहिए; जो भी सीधा-सच्चा मेरा व्यक्तित्व है, वही जगत जाने, वही दुनिया जाने, वही उचित है। और मैं तो कम से कम जानूं ही कि मैं कौन हूं। और अगर धीरे-धीरे इसका साहस बढ़ता चला जाए, तो झूठे व्यक्तित्वों का, फाल्स पर्सनालिटीज का तुम्हारे ऊपर प्रभाव नहीं होगा। तुम्हारा कोई व्यक्तित्व झूठा खड़ा नहीं होगा। धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन में सरलता घनी होती जायेगी। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी, वैसे-वैसे सरलता बढ़ेगी। और एक क्षण आयेगा जीवन में, जब तुम्हारा हृदय इतना निर्मल होगा, इतना सरल और सीधा होगा, उसमें कोई कठोरता, उसमें कोई कृत्रिमता, उसमें कोई झूठ न होने से वह इतना निर्दोष होगा, जैसे पानी का झरना होता है, जिसमें कोई कचरा नहीं है, जिसमें कोई धूलि नहीं है, जिसमें कोई गंदगी नहीं है, जिसमें कोई मिट्टी नहीं है। जैसे झरने के, निर्दोष झरने के नीचे के कंकड़-पत्थर तक दिखायी पड़ते हैं, नीचे की रेत भी दिखायी पड़ती है, ठीक वैसे ही जब मनुष्य इतना झरने की भांति सरल होता है, सीधा होता है, स्पष्ट होता है, साफ होता है, तो उस मन के भीतर जो आत्मा छिपी है, उसकी अनुभूति शुरू होती है। और आत्मा की अनुभूति हो, तो परमात्मा की खबर मिलनी शुरू हो जाती है।

जो अपने ही भीतर के सत्य को नहीं जानता, वह सारे जगत में छिपे हुए सत्य को कैसे जानेगा? पहला द्वार—खुद के भीतर जाकर स्वयं को जानने का है। और खुद के भीतर वही जा सकता है, जो अपने जीवन में झूठ और असत्य न ओढ़े हो। लेकिन सारे लोग ओढ़े हुए हैं! जो आदमी साधु नहीं है, वह साधु बना हुआ है। जो आदमी सेवक नहीं है, वह सेवक बना हुआ है। जिस आदमी के जीवन में कोई प्रेम नहीं है, वह प्रेम की बातें कर रहा है। जिसके जीवन में कोई सौंदर्य नहीं, वह सौंदर्य के गीत गा रहा है। तो फिर तो जीवन विकृत हो जायेगा, दूर हो जायेगा सत्य से। और जितना ही दूर होता जायेगा, उतनी कठिनाई होती जायेगी। और हम सब धोखा देने को अति उत्सुक हैं। दूसरों को ही नहीं, अपने को भी धोखा देने को उत्सुक हैं। दूसरों को धोखा देना उतना खतरनाक नहीं है, जितना अपने को धोखा देना।

मैंने सुना है कि लंदन में कोई सौ वर्ष पहले शेक्सपियर का कोई नाटक चल रहा था। वहां का जो सबसे बड़ा धर्म पुरोहित था, धर्मगुरु था, जो सबसे बड़ा बिशप था लंदन का, वह भी देखना चाहता था उस नाटक को। लेकिन संन्यासी, साधु, धर्मगुरु नाटक देखने नहीं जाते। और अगर वे मिल जायें सिनेमागृह में तो तुमको भी हैरानी होगी और वे तो परेशान हो ही जायेंगे। नाटक देखने वे नहीं जाते। क्योंकि जीवन में जहां भी सुख है, रस है, वे सबके विरोधी हैं।

तो उस धर्मगुरु के मन में इच्छा तो बहुत थी कि नाटक देखूं। रोज-रोज लोग प्रशंसा करते थे कि बहुत अच्छा नाटक है। लेकिन कैसे जायें! तो उसने एक पत्र उस नाटक के मैनेजर को लिखा और उस पत्र में लिखा

कि 'क्या तुम्हारे नाटकगृह में, तुम्हारे सिनेमा हाल में क्या पीछे की तरफ से कोई दरवाजा नहीं है, जिससे मैं वहां आकर नाटक देख सकूं? ताकि लोग मुझे न देख सकें और मैं नाटक देख लूं!'

उस मैनेजर ने पत्र का उत्तर दिया, 'मेरे नाट्यगृह में पीछे से दरवाजा है और अनेक बार अनेक लोग पीछे के दरवाजे से भी देखने आते हैं। ऐसे अनेक लोग आते हैं देखने जो चाहते हैं कि वे तो नाटक देखें, लेकिन लोग उन्हें न देख पायें। लेकिन जहां तक आपका संबंध है, यह निवेदन कर देना चाहता हूं, ऐसा दरवाजा तो है जो पीछे है, लेकिन ऐसा कोई भी दरवाजा इस भवन में नहीं है, जिसको परमात्मा न देखता हो!' लिखाः 'ऐसा कोई भी दरवाजा हमारे भवन में नहीं है, जिसको परमात्मा न देखता हो। मनुष्यों की आंख से छिपाना तो संभव हो जायेगा, लेकिन परमात्मा की आंख से, और खुद की आंख से छिपाना कैसे संभव होगा?'

हम खुद की आंख से अगर बहुत-सी बातें छिपाते चले जायें, तो फिर खुद को नहीं जान सकते हैं। खुद की आंख से कोई बात नहीं छिपानी चाहिए। साहस के साथ हम जैसे हैं—जैसे भी, बुरे और भले—स्वयं को वैसा ही जानना चाहिए। जब तुम अपनी सीधी-सीधी सचाई से परिचित हो जाओगे, जब तुम अपने सीधे-सीधे व्यक्तित्व को जानोगे, तो तुम्हारे जीवन में एक क्रांति हो जायेगी। क्यों? क्योंकि अगर कोई व्यक्ति स्वयं को स्पष्ट रूप से देखे तो उसमें जो भी गलतियां हैं, उनका टिकना असंभव है। वे गलतियां इसलिए टिकती हैं कि हम उन्हें छिपा लेते हैं।

कोई आदमी गलत नहीं हो सकता है, अगर वह अपने को सीधा और स्पष्ट देखने का साहस जुटा ले। अगर तुम्हें स्पष्ट दिखायी पड़े कि तुम्हारे भीतर झूठ है और तुम अच्छी-अच्छी बातों से उसे न छिपाओ, तो झूठ के साथ बहुत दिन जीना असंभव है। वैसे ही, जैसे तुम्हें दिखायी पड़े कि तुम्हारे पैर में फोड़ा है और तुम बिना इलाज के जीना चाहो। या तुम्हें जैसे दिखायी पड़ जाये, तुम्हें पता चल जाये कि तुम्हारे फेफड़े खराब हो गये हैं, क्षय रोग हो गया है, टी.बी. हो गयी है, कैंसर हो गया है, और तुम बिना इलाज के जी जाओ। अगर तुम्हें पता ही न चले, तो दूसरी बात है। लेकिन अगर तुम्हें ज्ञात हो जाये कि तुम्हारे भीतर कोई गहरी बीमारी है, तो तुम उस बीमारी के इलाज में निश्चित ही उत्सुक हो जाओगे।

अगर तुम्हें पता चल जाये कि तुम्हारे भीतर झूठ है, तो उस झूठ के साथ जीना कठिन है। क्योंकि झूठ बड़े से बड़े फोड़े से भी ज्यादा पीड़ादायी है। और झूठ बड़ी से बड़ी बीमारियों से भी बड़ी बीमारी है।

एक बार तुम्हें स्पष्ट रूप से अपने पूरे व्यक्तित्व का बोध होना चाहिए कि मेरे भीतर क्या है और क्या नहीं है। और कोई दूसरा तुम्हें नहीं बता सकता। यह तुम खुद ही निरीक्षण करोगे, तो दिखायी पड़ेगा। निरीक्षण तभी सफल होगा, जब तुम अपने को धोखा देने के लिए निरंतर श्रम न करो। अगर तुम निरंतर अपने को धोखा देने में लगे रहो, तो बहुत कठिनाई है।

एक फकीर हुआ गुरजिएफ। एक गांव से निकलता था। कुछ लोगों ने उसे गालियां दीं, अपमान भरे शब्द कहे, अभद्र बातें कहीं। उसने उनकी सारी बातें सुनीं और उनसे कहा कि 'मैं कल आकर उत्तर दूंगा!' वे लोग बहुत हैरान हुए, क्योंकि कोई गालियों का उत्तर कल नहीं देता। अगर मैं तुम्हें गाली दूं, तो तुम अभी कुछ करोगे। अगर तुम्हारा कोई अपमान करे तो तुम उसी वक्त कुछ करोगे। ऐसा तो कोई भी नहीं कहेगा शांति से कि हम कल आयेंगे और उत्तर देंगे!

गुरजिएफ ने कहा, 'मैं कल आऊंगा और उत्तर दूंगा।' उन लोगों ने कहा, 'यह तो बड़ी अजीब बात है! हमने कभी सुनी भी नहीं आज तक। कुछ तो करो, हमने इतना अपमान किया!' उसने कहा, 'पहले मैं सोचूं जाकर कि तुमने जो अपमान किया है, कहीं वह ठीक ही तो नहीं है। हो सकता है, तुमने जो बुराइयां मुझमें बतायीं, वे मुझमें हों। और अगर वे मुझमें हैं, तब मैं कल तुम्हें धन्यवाद दूंगा, क्योंकि तुमने अच्छा मेरे ऊपर उपकार किया, मेरे ऊपर कृपा की। और अगर वे मुझमें नहीं हैं, तो मैं निवेदन कर जाऊंगा कि तुम और सोचना; वे बुराइयां मैंने अपने में नहीं पायीं। झगड़े का इसमें कोई कारण नहीं है। ठीक स्थिति में मैं तुम्हें धन्यवाद दे दूंगा कि तुमने मुझ पर कृपा की। जो काम मुझे खुद करना चाहिए, वह तुमने कर दिया। तो तुम मेरे मित्र हो। और दूसरी स्थिति में मैं कह जाऊंगा कि यह मैंने खोजा, मेरे भीतर वे बुराइयां नहीं दिखीं जो तुमने बतायीं, तो तुम और विचार करना। इसमें कोई झगड़े का कारण नहीं है।'

वह दूसरे दिन आया और उसने कहा कि 'तुमने जो बातें कहीं, वे मेरे भीतर हैं। इसलिए मैं धन्यवाद देता हूं। और भी तुम्हें कोई बुराई मुझमें दिखायी पड़े। तो संकोच मत करना, मुझे रोकना और बता देना।'

ऐसा व्यक्ति होना चाहिए। ऐसा हमारा चिंतन होना चाहिए। ऐसी हमारी दृष्टि होनी चाहिए। और ऐसा आदमी बहुत दिन तक बुराइयों में नहीं रह सकता, उसका जीवन तो बदल जायेगा। और इतनी सरलता होनी चाहिए। तो ऐसा सरल मनुष्य परमात्मा से ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता। इतनी सरलता चाहिए, इतनी ह्युमिलिटी होनी चाहिए, इतनी विनम्रता होनी चाहिए मन की, इतना मुक्त मन होना चाहिए कि हम अपनी बुराइयां देख सकें, अपने ठीक-ठीक व्यक्तित्व को देख सकें और झूठे व्यक्तित्व से बचने का साहस कर सकें। नहीं तो सारे लोग करीब-करीब अभिनेता हो जाते हैं। जो उनके भीतर नहीं होता, उसको ओढ़ते हैं। जो नहीं होता है, उसको दिखलाते हैं। और तब यह चित्त जटिल और कठिन होता चला जाता है।

छोटी उम्र से अगर यह बोध तुम्हारे मन में आ जाये कि मुझे अपने भीतर कम से कम अपनी सच्चाई को जानने की सतत चेष्टा में संलग्न रहना चाहिए। जो भी मेरे भीतर है, उसे देखने का मुझमें साहस होना चाहिए। उसे ढांको न, उसे ओढ़ो न, उसे छिपाओ न।

किससे छिपायेंगे हम? दूसरों से छिपा लेंगे, लेकिन खुद से कैसे छिपायेंगे? और जिस बात को हम छिपाते चले जायेंगे, वह जिंदा रहेगी; वह मिटेगी नहीं। उसे उघाड़ें और देखें और पहचानें। और जब उसकी पीड़ा अनुभव होगी, तो उसके बदलाहट का विचार, उसको परिवर्तन करने का खयाल, उसे स्वस्थ करने की वृति भी पैदा होगी। और सबसे बड़ी बात है, इस सारी प्रक्रिया में चित्त सरल होता चला जाता है। इस सारी प्रक्रिया में चित्त में एक तरह की अदभुत शांति और सरलता आने लगती है। क्योंकि कुछ छिपाने को नहीं होता है, तो आदमी जटिल नहीं होता है।

और जो व्यक्ति इतना सजग हो कि उसे अहंकार का भाव न पैदा हो कि मैं कुछ हूं खास, उसे ऐसा दिखायी पड़ने लगे—जैसे घास-पात हैं, जैसे वृक्ष हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, जैसे और सारी दुनिया है—वैसा मैं हूं। इस सारे विराट जीवन का मैं एक छोटा-सा टुकड़ा, एक अत्यंत छोटा-सा अणु! मेरा होना कोई मूल्य नहीं रखता। मेरे होने का कोई बहुत अर्थ नहीं है। मैं बिलकुल ना-कुछ हूं।

अगर यह खयाल निरंतर बैठता चला जाये, तो एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारा मन दर्पण की भांति

निर्दोष हो गया। एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारे हृदय में एक ऐसी शांति आयी है, जो अपूर्व है। एक दिन तुम पाओगे, ऐसा सन्नाटा आया है, जो तुमने कभी नहीं जाना था। एक ऐसा अज्ञात आनंद तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जायेगा, जिसकी तुम्हें अभी कोई भी खबर नहीं है। और उस दिन तुम्हारे जीवन में नये अंकुरण होंगे, तुम्हारा जीवन धीरे-धीरे परमात्मा के जीवन में विकसित होने लगेगा।

एक छोटी-सी कहानी और मैं चर्चा को पूरा करूं, फिर तुम्हें कुछ प्रश्न होंगे, इस संबंध में, तो वह मैं रात की चर्चा में बात करूंगा।

लाओत्से नाम का एक बहुत अदभुत फकीर चीन में हुआ। वह इतना विनम्र और सरल व्यक्ति था, इतना अदभुत व्यक्ति था! उसकी एक-एक अंतर्दृष्टि बहुमूल्य है। उसके एक-एक शब्द में इतना अमृत है, उसके एक-एक शब्द में इतना सत्य है, जिसका कोई हिसाब नहीं है। लेकिन आदमी वह बहुत सीधा और सरल था। खुद सम्राट के कानों तक उसकी खबर पहुंची और सम्राट ने कहा, मैंने सुना है कि लाओत्से नाम का जो व्यक्ति है बहुत अति असाधारण है, बहुत एक्सट्रा-आर्डिनरी है। असामान्य ही नहीं, बहुत असामान्य है, बहुत असाधारण है। उसके वजीरों ने कहा, 'यह बात तो सच है। उससे ज्यादा असाधारण व्यक्ति इस समय पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।'

सम्राट उसे देखने गया! सम्राट देखने गया, तो उसने सोचा था कि वह बहुत महिमाशाली, कोई बहुत प्रकाश को युक्त, कोई बहुत अदभुत व्यक्तिव का कोई प्रभावशाली व्यक्ति होगा। लेकिन जब वह द्वार पर पहुंचा, तो उस झोपड़े के बाहर ही एक छोटी-सी बगिया थी, और लाओत्से उस बगिया में अपनी कुदाली लेकर मिट्टी खोद रहा था।

सम्राट ने उससे पूछा, 'बागवान' लाओत्से कहां है?' क्योंकि यह तो कोई खयाल ही नहीं कर सकता कि यही लाओत्से होगा! फटे से कपड़े पहने हुए, बाहर मिट्टी खोद रहा हो, इसकी तो कल्पना नहीं हो सकती थी। सीधा-सादा किसान जैसा मालूम होता था। लाओत्से ने कहा, 'भीतर चलें, बैठें। मैं अभी लाओत्से को बुलाकर आ जाता हूं।' सम्राट भीतर जाकर बैठा और प्रतीक्षा करने लगा। वह जो लाओत्से था, जो बगीचे में मिट्टी खोद रहा था, वह पीछे के रास्ते से गया, झोपड़े में से अंदर आया। आकर नमस्कार किया और कहा, 'मैं ही लाओत्से हूं।' राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, 'तुम तो वही बागवान मालूम होते हो, जो बाहर था?' उसने कहा, 'मैं ही लाओत्से हूं। कसूर माफ करें! क्षमा करें कि मैं छोटा-सा काम कर रहा था। लेकिन आप कैसे आये?' उस राजा ने कहा, 'मैंने तो सुना कि तुम बहुत असाधारण व्यक्ति हो, लेकिन तुम तो साधारण मालूम होते हो!' लाओत्से बोला, 'मैं बिलकुल ही साधारण हूं। आपको किसी ने गलत खबर दे दी है।'

राजा वापस लौट गया। अपने मंत्रियों से जाकर उसने कहा कि 'तुम कैसे नासमझ हो! एक साधारण जन के पास मुझे भेज दिया!' उन सारे लागों ने कहा, 'उस आदमी की यही असाधारणता है कि वह एकदम साधारण है।' मंत्रियों ने कहा, 'उस आदमी की यही खूबी है कि वह एकदम साधारण है।'

साधारण से साधारण आदमी भी यह स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि वह साधारण है। उस आदमी की यही खूबी है, यही विशिष्टता है कि उसने कुछ भी असाधारण होने की इच्छा नहीं की है, वह एकदम साधारण हो गया है।

राजा दुबारा गया। और उसने लाओत्से से पूछा कि 'तुम्हें यह साधारण होने का खयाल कैसे पैदा हुआ? तुम साधारण कैसे बने?' उसने कहा, 'अगर मैं कोशिश करके साधारण बनता, तो फिर साधारण बन ही नहीं सकता था, क्योंकि कोशिश करने में तो आदमी असाधारण बन जाता है। नहीं, मुझे तो दिखायी पड़ा, और मैं एकदम साधारण था। मैंने अनुभव कर लिया—बना नहीं। मैंने जाना कि मैं साधारण हूं; मैं बना नहीं हूं साधारण। क्योंकि बनने की कोशिश में तो आदमी असाधारण बन जाता है। मैं बना नहीं, मैंने तो जाना जीवन को—पहचाना।

मैंने पाया; मुझे न मृत्यु का पता है, न जन्म का पता है। मैंने पाया; यह श्वास क्यों चलती है, यह मुझे पता नहीं है, खून क्यों बहता है, मुझे पता नहीं है। मुझे भूख क्यों लगती है, मुझे प्यास क्यों लगती है—यह मुझे पता नहीं है। मैंने पाया, मैं तो बिलकुल अज्ञानी हूं। फिर मैंने पाया कि मैं तो बिलकुल अशक्त हूं—मेरी कोई शक्ति नहीं। फिर मैंने पाया; मैं तो कुछ विशिष्ट नहीं हूं। जैसी दो आंखें दूसरों को हैं, वैसी दो आंखें मेरे पास हैं। दो हाथ दूसरों के पास हैं, वैसे दो हाथ मेरे पास हैं। मैं तो एक अति सामान्य व्यक्ति हूं, यह मैंने देखा, पहचाना। मैं साधारण हूं, मैं बड़ा नहीं हूं। यह तो देखा और समझा और मैंने पाया कि मैं साधारण हूं।

लेकिन यह घटना ऐसे घटी कि मैं एक जंगल गया था—लाओत्से ने कहा—और वहां मैंने लोगों को लकड़ियां काटते देखा। बड़े-बड़े दरख्त काटे जा रहे थे। ऊंचे-ऊंचे दरख्त काटे जा रहे थे। सारा जंगल कट रहा था। बड़े दरख्त लगे हुए थे और जंगल कट रहा था, लेकिन बीच जंगल में एक बहुत बड़ा दरख्त था। इतना बड़ा दरख्त था कि उसकी छाया इतने दूर तक फैल गई थी, वह इतना पुराना था और प्राचीन मालूम होता था कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां विश्राम कर सकती थीं, इतनी उसकी छाया थी। तो मैंने अपने मित्रों से कहा कि जाओ और पूछो कि इस दरख्त को कोई क्यों नहीं काटता है? यह दरख्त इतना बड़ा कैसे हो गया? जहां सारा जंगल कट रहा है, वहां इतना बड़ा दरख्त कैसे? जहां सब दरख्त ठूंठ रह गए हैं, जहां नये दरख्त काटे जा रहे हैं रोज, वहां यह इतना बड़ा दरख्त कैसे बच रहा है? वह क्यों लोगों ने छोड़ दिया? तो मेरे मित्र, और मैं, वहां गये। और मैंने वृद्ध बढ़इयों से पूछा, जो लकड़ियां काटते थे कि 'यह दरख्त इतना बड़ा कैसे हो गया?' उन्होंने कहा, 'यह दरख्त बड़ा अजीब है। यह दरख्त बिलकुल साधारण है। इसके पत्ते कोई जानवर नहीं खाते। इसकी लकड़ियों को जलाया नहीं जा सकता, वे धुआं करती हैं। इसकी लकड़ियां बिलकुल एड़ी-टेढ़ी हैं, इनको काटकर फर्नीचर नहीं बनाया जा सकता। द्वार-दरवाजे नहीं बनाये जा सकते। दरख्त बिलकुल बेकार है, बिलकुल साधारण है। इसलिए इसको कोई काटता नहीं। लेकिन जो दरख्त सीधा है, और ऊंचा गया है, उसे जाता है, उसके खंभे बनाये जाते हैं।'

लाओत्से हंसा और वापस लौट आया। और उसने कहा, उस दिन से मैं समझ गया कि अगर सच में तुम्हें जीवन में बड़ा होना है, तो उस दरख्त की भांति हो जाओ, जो बिलकुल साधारण है। जिसके पत्ते भी अर्थ के नहीं, जिसकी लकड़ी भी अर्थ की नहीं। तो उस दिन से मैं वैसा दरख्त हो गया। बेकार। मैंने फिर सारी महत्वाकांक्षा छोड़ दी। बड़ा होने की, ऊंचा होने की, असाधारण होने की सारी दौड़ छोड़ दी, क्योंकि मैंने पाया कि जो ऊंचा होना चाहेगा, वह काटा जायेगा। मैंने पाया कि जो बड़ा होना चाहेगा, वह काट कर छोटा कर दिया जायेगा। मैंने पाया है कि प्रतियोगिता में, प्रतिस्पर्धा में महत्वाकांक्षा में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं

है। और तब मैं अति साधारण—जैसा मैं था, न कुछ...चुपचाप वैसे ही बैठा रहा। और जिस दिन मैंने सारी दौड़ छोड़ दी, उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर कोई अदभुत चीज का जन्म हो गया है। उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर परमात्मा के अनुभव की शुरुआत हो गयी है।

जो व्यक्ति साधारण से साधारण और सरल से सरल होने को राजी हो जाता है, सत्य खुद उसके द्वार आ जाता है। और जो व्यक्ति असाधारण होने की, विशिष्ट होने की, बड़ा होने की, महत्वाकांक्षी होने की, अहंकार तृप्त करने की दौड़ में पड़ जाता है, उसके जीवन में असत्य घना से घना होता जाता है और सत्य से उसके संबंध सदा के लिए क्षीण होते जाते हैं। अंततः उसके पास झूठ का एक ढेर रह जाता है और सत्य की कोई भी किरण नहीं। लेकिन जो सरल हो जाता है, सीधा, साधारण, सामान्य, उसके जीवन में झूठ की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। उसके जीवन में सत्य की किरण का जन्म होता है और सारा अंधकार समाप्त हो जाता है।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं सरलता के लिए, इन पर विचार करना, इन पर सोचना। अपने जीवन में निरीक्षण करना और देखना कि क्या तुम्हारे जीवन में सरलता बढ़ रही है या जटिलता बढ़ रही है?

अगर जटिलता बढ़ रही हो, तो समझना कि तुमने गलत मार्ग चुना है। और जीवन के अंत में तुम्हें विफलता मिलेगी, दुख मिलेगा, पीड़ा, चिंता के अतिरिक्त तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं आयेगा।

और अगर सरलता का मार्ग तुमने जीवन में चुना और स्मरणपूर्वक रोज सरल से सरल होते गये, तो तुम पाओगे कि बचपन में जो आनंद था, उससे बहुत बड़ा आनंद निरंतर बढ़ता जायेगा। और बुढ़ापा तुम्हारा एक अदभुत गौरव की भांति होगा, जिसमें आनंद की पूरी छाया, जिसमें आनंद की पूरी अनुभूति, जिसमें एक आंतरिक सौंदर्य, सत्य का एक बल, और जिसमें आंतरिक रूप से अमृत का अनुभव—उसका अनुभव, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है—उपलब्ध होता है।

इन पर तुम विचार करना, इन पर तुम सोचना और अपने जीवन से तौलना कि तुम्हारे जीवन की दिशा क्या है।

स्मरण रहे, जो व्यक्ति भी परमात्मा की दिशा के प्रतिकूल जाता है, वह अपने ही हाथों अपने को नष्ट कर लेता है। और जो व्यक्ति परमात्मा की दिशा में चरण उठाता है, वह धीरे-धीरे विकसित होता है, उसके भीतर अनुभूतियां घनी होती हैं, उसके जीवन में अर्थ आता है; उसके जीवन में बहुत आंतरिक संपदा आती है और अंततः उसे कृतार्थता और धन्यता का अनुभव होता है।

इन बातों को इतने प्रेम और शांति से तुम सुनते रहे हो, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। जो तुम्हारे प्रश्न हों, वह मैं रात उत्तर दे सकूंगा।

साधना शिविर, तुलसीश्याम, सौराष्ट्र; दिनांक 6 फरवरी, 1966

दूसरा प्रवचन

ध्यान का द्वारः सरलता

जिसे परमात्मा के दर्शन शुरू हो जायेंगे, वह एक पक्षी का गीत सुनेगा, तो उस गीत में भी उसे परमात्मा

की वाणी सुनायी पड़ेगी। वह एक फूल को खिलते देखेगा, तो उस फूल के खिलने में भी परमात्मा की सुवास, परमात्मा की सुगंध उसे मिलेगी। उसे चारों तरफ एक अपूर्व शक्ति का बोध होना शुरू हो जाता है। लेकिन यह होगा तभी, जब मन हमारा इतना निर्मल और स्वच्छ हो कि उसमें प्रतिबिंब बन सके, उसमें रिफ्लेक्शन बन सके।

तुमने देखा होगा झील पर कभी जाकर। अगर झील पर बहुत लहरें उठती हों तो आकाश में चांद हो, तो फिर झील पर चांद का कोई प्रतिबिंब नहीं बनता। और अगर झील बिलकुल शांत हो, उसमें कोई लहर न उठती हो, दर्पण की तरह चुप और मौन हो, तो फिर चांद उसमें दिखायी पड़ता है। और जो चांद झील में दिखायी पड़ता है, वह उससे भी सुंदर होता है, जो ऊपर आकाश में होता है।

प्रकृति चारों तरफ फैली हुई है, लेकिन हमारा मन दर्पण की भांति नहीं है, इसलिए उसके भीतर उस प्रकृति की कोई छवि नहीं उतरती, कोई चित्र नहीं बनते हैं। और तब हम वंचित हो जाते हैं उसे जानने से, जो हमारे चारों तरफ मौजूद है।

लोग पूछते हैं, तुमने भी प्रश्न पूछे हैं, कि ईश्वर है या नहीं? यह वैसे ही है? जैसे कोई मछली पूछे कि सागर कहां है? समुद्र कहां है? तो उस मछली को हम क्या कहेंगे? उसको कहेंगे कि तुम्हारे चारों तरफ जो है, वह सागर ही है। तो मछली कैसे देख सकेगी? जब हम पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं, तो उसका मतलब यह हुआ कि हमारे पास ईश्वर को देखने वाला दर्पण नहीं है अन्यथा ईश्वर तो चारों तरफ मौजूद है। लेकिन हमारे भीतर दर्पण मौजूद नहीं है, इसलिए कठिनाई है।

कैसे हमारा मन दर्पण बन जाये, थोड़ी-सी बातें इस संबंध में मैंने तुमसे की हैं, आज और दो-तीन सूत्रों पर तुमसे बात करूं। अगर इन सूत्रों का थोड़ा प्रयोग करो, तो कोई कठिनाई नहीं कि तुम भी एक निर्मल चित्त को उपलब्ध हो जाओ। और एक शांत मन को उपलब्ध हो जाओ। और फिर उस शांत मन में उन सारी चीजों के प्रतिबिंब बनें जो परमात्मा की ओर इशारा करती हैं।

पहला सूत्र है 'सरलता'। मनुष्य की सभ्यता जितनी विकसित हुई है, मनुष्य उतना ही जटिल, कठोर और कठिन होता गया है। सिम्पलीसिटी, सरलता जैसी कोई भी चीज उसके भीतर नहीं रह गयी है। उसका मन अत्यंत कठोर और धीरे-धीरे पत्थर की भांति, पाषाण की भांति सख्त होता गया है। और जितना हृदय पत्थर की भांति कठोर हो जायेगा, उतनी ही कठिन है बात; उतना ही जीवन में कुछ जानना कठिन है, मुश्किल है। सरल मन चाहिए। कैसे होगा सरल मन?

सरल मन की जो पहली इ□ट है, जो पहले आधार है, जो पहली बुनियाद है, वह कहां से रखनी होगी? आमतौर से तो जीवन में हम जैसे-जैसे उम्र बड़ी होती है, कठोर ही होते चले जाते हैं। और यही तो वजह है...तुमने सुना होगा बूढ़े को भी यह कहते हुए कि बचपन के दिन बहुत सुखद थे। बचपन बहुत आनंद से भरा था। बचपन बहुत आनंदपूर्ण था। तुम्हें भी लगता होगा। अभी यों तो तुम्हारी उम्र ज्यादा नहीं है, लेकिन तुम्हें भी लगता होगा कि जो दिन बीत गये बचपन के, वे बहुत आनंदपूर्ण थे। और धीरे-धीरे उतना आनंद नहीं है। क्यों? यह तुमने सुना तो होगा, लेकिन विचार नहीं किया होगा कि बचपन के दिन इतने आनंदपूर्ण क्यों होते हैं?

बचपन के दिन इसलिए आनंदपूर्ण हैं कि बचपन के दिन सरलता के दिन हैं। हृदय होता है सरल, इसलिए चारों तरफ आनंद का अनुभव होता है। फिर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, हृदय होने लगता है कठिन और कठोर। फिर आनंद क्षीण होने लगता है। दुनिया तो वही है— बूढ़ों के लिए भी वही है, बच्चों के लिए भी वही है। लेकिन बच्चों के लिए चारों तरफ आनंद की वर्षा मालूम होती है। मौज ही मौज मालूम होती है। सौंदर्य ही सौंदर्य मालूम होता है। छोटी-छोटी चीज में अदभुत दर्शन होते हैं। छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर को भी बच्चा बीन लेता है और हीरे-जवाहरातों की तरह आनंदित होता है। क्या कारण है? कारण है, भीतर हृदय सरल है—जहां हृदय सरल है, वहां कंकड़-पत्थर भी हीरे-मोती हो जाते हैं। और जहां हृदय कठोर है, वहां हीरे-मोती के ढेर लगे रहें, तो कंकड़-पत्थरों से ज्यादा नहीं होते।

जहां हृदय सरल है, वहां छोटे से फूल में अपूर्व सौंदर्य के दर्शन होते हैं। जहां हृदय कठिन है, वहां फूलों का ढेर भी लगा रहे, तो उनका कहीं भी दर्शन नहीं होता। जहां हृदय सरल है; छोटे से झरने के किनारे भी बैठकर अदभुत सौंदर्य का बोध होता है। और जहां हृदय कठिन है, वहां कोई कश्मीर जाये, या स्विटजरलैंड जाये, या और सौंदर्य के स्थानों पर जाये, तो वहां भी उसे कोई सौंदर्य का बोध नहीं होता है। वहां भी उसे कोई आनंद की अनुभूति नहीं होती।

लेकिन बूढ़े लोग यह तो कहते हैं कि बचपन के दिन सुखद थे, लेकिन यह विचार नहीं करते कि क्यों सुखद थे? अगर इस बात पर विचार करें, तो पता चलेगा, हृदय सरल था, इसलिए जीवन में सुख था। तो अगर बुढ़ापे में भी हृदय सरल हो, तो जीवन में बचपन से भी ज्यादा सुख होगा। होना भी यही चाहिए। यह तो बड़ी उल्टी बात है कि बचपन के दिन सुखद हों और वह सुख धीरे-धीरे कम होता जाये, यह तो उल्टी बात हुई। जीवन में सुख का विकास होना चाहिए। जितना सुख बचपन में था, बुढ़ापे में उससे हजार गुना ज्यादा होना चाहिए, क्योंकि इतना जीवन का अनुभव, इतना विकास, इतनी समझ का बढ़ जाना, सुख का भी बढ़ना होना चाहिए।

लेकिन होती बात उल्टी है। बूढ़ा आदमी दुखी होता है। और बच्चा सुखी होता है। इसका अर्थ है कि जीवन की गति हमारी कुछ गलत है। हम जीवन को ठीक से व्यवस्था नहीं देते। अन्यथा वृद्ध व्यक्ति को जितना आनंद होगा, उतना बच्चे को क्या हो सकता है? यह तो पतन हुआ। बचपन में सुख हुआ और बुढ़ापे में दुख हुआ, यह तो पतन हुआ। हमारा जीवन नीचे गिरता गया; बजाय बढ़ने के, जीवन नीचे गिरा! बजाय ऊंचा होने के, हम पीछे गए। यह तो उल्टी बात है। अगर ठीक-ठीक मनुष्य का विकास हो, तो बुढ़ापे के अंतिम दिन सर्वाधिक आनंद के दिन होंगे—होने चाहिए। और अगर न हों, तो जानना चाहिए कि हम गलत ढंग से जीये। हमारा जीवन गलत ढंग का हुआ।

अगर किसी स्कूल में ऐसा हो कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आयें, वे तो ज्यादा समझदार हों और वे कालेज छोड़कर निकलें, तो कम समझदार हो जायें! तो उस कालेज को हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, यह तो पागलखाना है! होना तो यह चाहिए कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी आयें, बच्चे आयें, तो समझ बहुत कम हो। जब वे कालेज को छोड़ें, स्कूल को छोड़ें, तो उनकी समझ और बढ़ जानी चाहिए। जीवन में जो बच्चे आते हैं, वे ज्यादा सुखी मालूम होते हैं और जो बूढ़े जीवन को छोड़ते हैं, वे ज्यादा दुखी हो जाते हैं। तो यह तो

बहुत उल्टी बात हो गयी। इस उल्टी बात में हमारे हाथ में गलती होगी, कुछ कसूर होगा।

सबसे बड़ा कसूर है, सरलता को हम खो देते हैं, कमाते नहीं। सरलता कमानी चाहिए, सरलता बढ़नी चाहिए, गहरी होनी चाहिए, विस्तीर्ण होनी चाहिए। जितना हृदय सरल होता चला जायेगा, उतना ही ज्यादा जीवन में—इसी जीवन में, सुख की संभावना बढ़ जायेगी। कैसे चित्त सरल होगा, मन कैसे सरल होगा, और कैसे कठिन हो जाता है—इन दो बातों पर विचार करना जरूरी है।

उन लोगों का मन सर्वाधिक कठिन हो जाता है, जिनके भीतर अहंकार का भाव जितना ज्यादा होता है। जितना उन्हें लगता है कि मैं कुछ हूं, जिन्हें समबडी होने का भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं कुछ खास हूं, मैं कुछ हूं। अहंकार जिनमें, ईगो जिनमें बहुत तीव्र हो जाती है, जिनमें दंभ बहुत गहरा हो जाता है, उनका हृदय कठोर होता चला जाता है। जिनके भीतर अहंकार का भाव जितना कम होता है, उनका हृदय उतना ही सरल होता है। बच्चे में कोई अहंकार नहीं होता, इसलिए वह सरल है।

क्राइस्ट से किसी ने एक बार पूछा...वे एक बाजार में खड़े थे। कुछ लोग उन्हें घेर कर खड़े हुए थे; उनसे कुछ बातें पूछ रहे थे। तभी उनसे किसी ने पूछा कि 'परमात्मा के राज्य में कौन लोग प्रवेश कर सकेंगे?' तो क्राइस्ट ने एक छोटे से बच्चे को उठाया और कहा, 'जिनके हृदय इस बच्चे की भांति होंगे, वे ही केवल परमात्मा के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं।' 'जिनके हृदय बच्चों की भांति होंगे', लेकिन हम तो सभी बच्चों के हृदय खो देते हैं, धीरे-धीरे खो देते हैं क्योंकि हमारे भीतर एक अहंकार पैदा हो जाता है कि मैं कुछ हूं। लगने लगता है कि मैं कुछ हूं। अगर हम धन वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं धनी हूं। अगर हम बहुत पद वाले घर में पैदा हुए हैं, तो लगता है कि मैं कुछ हूं—विशिष्ट, और लोगों से भिन्न। अगर एक व्यक्ति अच्छे कपड़े पहनता है, तो सोचता है मैं कुछ हूं। अगर एक व्यक्ति ज्यादा शिक्षा पा लेता है और उपाधियां उपलब्ध कर लेता है, तो सोचता है, मैं कुछ हूं!

यह 'मैं कुछ' होने का भाव जितना तीव्र होता जाता है उतना ही हृदय कठोर होता चला जाता है। जबकि आश्चर्यजनक बात यह है कि मनुष्य की शक्ति क्या है, मनुष्य की सामर्थ्य क्या है? कुछ होने का बोध कितना गलत है! अगर विचार करो तो दिखायी पड़ेगा! जैसे तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम क्यों पैदा हुए। तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम क्यों मर जाओगे। तुम्हें यह भी पता न होगा कि तुम्हारी जो श्वास बाहर गयी है, अगर वह भीतर न जायेगी, तो तुम्हारा क्या वश है उसके ऊपर! श्वास पर भी हमारा कोई वश नहीं है, कोई शक्ति नहीं, कोई ताकत नहीं है। फिर भी हम सोचते हैं, मैं कुछ हूं।

क्या हमारी सामर्थ्य है? कितनी हमारी शक्ति है? मनुष्य का बल कितना है? अगर हम जीवन को देखें, तो ज्ञात होगा; हमारा कोई भी तो बल नहीं है। बहुत छोटी-सी सीमित सामर्थ्य है। उसी सामर्थ्य में हमारे भीतर दंभ और अहंकार पैदा हो जाता है। समझेंगे तो ज्ञात होगा कि हम ना कुछ हैं। जैसे हवा में उड़ते हुए पत्ते होते हैं, वैसी हमारी स्थिति है। पैदा हुए, ज्ञात नहीं क्यों! पैदा होने में किसी ने पूछा नहीं कि पैदा होना है या नहीं! तुम्हारा कोई चुनाव, तुम्हारी कोई इच्छा काम नहीं की। मरते वक्त भी कोई पूछेगा नहीं। जीवन की क्रिया में भी तुम्हारा कोई हक नहीं है। जिस दिन श्वास आनी बंद हो जायेगी, तुम चाहो तो भी श्वास आ नहीं सकती। अगर मनुष्य के हाथ में यह होता कि वह जब तक चाहे श्वास ले सकता, तो कोई आदमी मरता नहीं। और

कितना छोटा-सा जीवन है और हमारे हाथ में क्या है?

एक छोटी-सी घटना कहूं, उससे मेरी बात समझ में आये कि हमारे हाथ में करीब-करीब कुछ भी नहीं है। लेकिन फिर भी हमको यह वहम पैदा होता है कि मैं कुछ हूं और उससे हम कठोर हो जाते हैं।

बड़े से बड़ा धनी आदमी, जिसके पास कितनी ही संपत्ति हो, जब मृत्यु उसके द्वार खड़ी हो जाती है, तो उसे पता चलता है कि मेरी कोई ताकत नहीं। बड़े से बड़ा सम्राट, जिसके पास बहुत शक्ति हो, जिसने दुनिया में न मालूम कितने लोगों की हत्या की हो, जब मौत उसके द्वार खड़ी हो जाती है, तो पाता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। अब तक किसी मनुष्य को भी इस वहम को कायम रखने का कोई कारण नहीं मिला कि उसकी कोई शक्ति है, कि वह कुछ है। एक घटना मैं तुम्हें कहूं।

एक बहुत बड़े राजमहल के निकट कुछ थोड़े से बच्चे खेल रहे थे। एक बच्चे ने पत्थर की ढेरी में से एक पत्थर उठाया और राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। वह पत्थर अपने पत्थर की ढेरी से ऊपर उठा; बच्चे ने फेंका तो पत्थर ऊपर उठा। उस पत्थर ने, नीचे जो पत्थर पड़े थे उनसे कहा कि 'मित्रो, मैं आकाश की तरफ जा रहा हूं!' बात ठीक ही थी। गलत कुछ भी न था। जा ही रहा था। नीचे के पड़े पत्थर देख रहे थे। उनके वश के बाहर था कि वे भी जाएं। इसलिए इस पत्थर की विशिष्टता को स्वीकार करने में—अस्वीकार करने का कोई कारण भी न था, स्वीकार करना ही पड़ा।

वह पत्थर ऊपर उठता गया। वह जाकर कांच की खिड़की से टकराया महल के। कांच टूटकर चकनाचूर हो गया। उस पत्थर ने जोर से कहा कि 'मैंने कितनी बार कहा कि मेरे रास्ते में कोई न आये, नहीं तो टूटकर चकनाचूर हो जायेगा!' यह भी बात ठीक ही थी। कांच टूट ही गया था। टुकड़े-टुकड़े हो गया था। पत्थर का यह गरूर भी ठीक ही था कि 'मैंने कहा है कि मेरे रास्ते में जो आयेगा, वह टूट जायेगा।

फिर पत्थर भीतर गिरा। वहां ईरानी कालीन बिछा हुआ था, उसके ऊपर गिरा। उस पत्थर ने मन में कहा, 'बहुत थक गया। एक शत्रु का भी सफाया किया, अब थोड़ी देर विश्राम कर लूं!' उसने विश्राम भी किया। लेकिन उस महल के नौकर को खबर पड़ी और कांच के फूटने की आवाज पहुंची। वह भागा हुआ आया। उसने पत्थर को उठाकर वापस खिड़की से नीचे की तरफ फेंका। जब वह पत्थर वापस लौटने लगा, तब उसने कहा, 'मित्रों की मुझे बहुत याद आती है, अब मुझे वापस चलना चाहिए।' वह नीचे गया और उस ढेरी के ऊपर वापस गिरा—अपने पत्थरों की ढेरी पर। उसने पत्थरों से कहा, 'मित्रो! बड़ी अदभुत यात्रा रही, बड़ी अच्छी यात्रा रही।'

खाली, पवित्रतम, शुद्धतम व्यक्तित्व को जानकर ही व्यक्ति जीवन में आनंद को, अमृत को उपलब्ध हो सकता है। उसे हम जान लें, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है, उसका फिर कोई अंत नहीं है, उसकी कोई समाप्ति नहीं है। उसे हम जान लें, उसके जानने के बाद कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं है, कोई अपमान नहीं है। उसे हम जान लें, फिर जीवन में कोई विषमता नहीं, समता है। फिर जीवन में शांति है; फिर जीवन में कुछ अदभुत है, जिसे शब्दों में कहना कठिन है।

लेकिन उसे जानने के लिए सरल होना जरूरी है। और सरल होने के लिए जो-जो झूठ हमने ओढ़ रखे हैं, उन सबको विदा कर देना जरूरी है। जो-जो अभिनय हमने ओढ़ रखे हैं, वे सब समाप्त कर देने जरूरी हैं।

झूठा व्यक्तित्व टूट जाये तो ही सत्य का अनुभव हो सकता है। और अगर यह बचपन से स्मृति हो और बहुत छोटी उम्र से खयाल में हो, फिर हम झूठे व्यक्तित्व को ओढ़ने से भी बच सकते हैं।

तुम खुद खयाल करोगे, कितनी बातें हम झूठी ओढ़े रखते हैं, कितनी बातें! हम जैसा होते हैं, वैसा हम कभी बताते नहीं। हम जैसे नहीं होते हैं, वैसा हम बताने की कोशिश करते हैं। हम जितने सुंदर नहीं हैं, उतने सुंदर दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने सच्चे नहीं हैं, उतने सच्चे दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने ईमानदार नहीं हैं, उतने ईमानदार दिखने की कोशिश करते हैं। हम जितने प्रेमपूर्ण नहीं हैं, उतने प्रेमपूर्ण दिखने की कोशिश करते हैं।

तब क्या होगा? तब इस कोशिश में, झूठ धीरे-धीरे हमारे चारों तरफ लिपटता चला जायेगा और हम जो नहीं हैं, वही हमें ज्ञात होने लगेगा कि हम हैं। निरंतर के प्रयास से, झूठ को ओढ़ने से ऐसा लगने लगेगा कि हम हैं। और तब भ्रांति हो जायेगी। और तब भीतर पहुंचना कठिन हो जायेगा। अगर छोटी उम्र से ही यह बोध रहे कि मैं जो हूं, उससे भिन्न न मुझे दिखायी पड़ना चाहिए, न मुझे कोशिश करनी चाहिए; जो भी सीधा-सच्चा मेरा व्यक्तित्व है, वही जगत जाने, वही दुनिया जाने, वही उचित है। और मैं तो कम से कम जानूं ही कि मैं कौन हूं। और अगर धीरे-धीरे इसका साहस बढ़ता चला जाए, तो झूठे व्यक्तित्वों का, फाल्स पर्सनालिटीज का तुम्हारे ऊपर प्रभाव नहीं होगा। तुम्हारा कोई व्यक्तित्व झूठा खड़ा नहीं होगा। धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन में सरलता घनी होती जायेगी। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी, वैसे-वैसे सरलता बढ़ेगी। और एक क्षण आयेगा जीवन में, जब तुम्हारा हृदय इतना निर्मल होगा, इतना सरल और सीधा होगा, उसमें कोई कठोरता, उसमें कोई कृत्रिमता, उसमें कोई झूठ न होने से वह इतना निर्दोष होगा, जैसे पानी का झरना होता है, जिसमें कोई कचरा नहीं है, जिसमें कोई धूलि नहीं है, जिसमें कोई गंदगी नहीं है, जिसमें कोई मिट्टी नहीं है। जैसे झरने के, निर्दोष झरने के नीचे के कंकड़-पत्थर तक दिखायी पड़ते हैं, नीचे की रेत भी दिखायी पड़ती है, ठीक वैसे ही जब मनुष्य इतना झरने की भांति सरल होता है, सीधा होता है, स्पष्ट होता है, साफ होता है, तो उस मन के भीतर जो आत्मा छिपी है, उसकी अनुभूति शुरू होती है। और आत्मा की अनुभूति हो, तो परमात्मा की खबर मिलनी शुरू हो जाती है।

जो अपने ही भीतर के सत्य को नहीं जानता, वह सारे जगत में छिपे हुए सत्य को कैसे जानेगा? पहला द्वार—खुद के भीतर जाकर स्वयं को जानने का है। और खुद के भीतर वही जा सकता है, जो अपने जीवन में झूठ और असत्य न ओढ़े हो। लेकिन सारे लोग ओढ़े हुए हैं! जो आदमी साधु नहीं है, वह साधु बना हुआ है। जो आदमी सेवक नहीं है, वह सेवक बना हुआ है। जिस आदमी के जीवन में कोई प्रेम नहीं है, वह प्रेम की बातें कर रहा है। जिसके जीवन में कोई सौंदर्य नहीं, वह सौंदर्य के गीत गा रहा है। तो फिर तो जीवन विकृत हो जायेगा, दूर हो जायेगा सत्य से। और जितना ही दूर होता जायेगा, उतनी कठिनाई होती जायेगी। और हम सब धोखा देने को अति उत्सुक हैं। दूसरों को ही नहीं, अपने को भी धोखा देने को उत्सुक हैं। दूसरों को धोखा देना उतना खतरनाक नहीं है, जितना अपने को धोखा देना।

मैंने सुना है कि लंदन में कोई सौ वर्ष पहले शेक्सपियर का कोई नाटक चल रहा था। वहां का जो सबसे बड़ा धर्म पुरोहित था, धर्मगुरु था, जो सबसे बड़ा बिशप था लंदन का, वह भी देखना चाहता था उस नाटक

को। लेकिन संन्यासी, साधु, धर्मगुरु नाटक देखने नहीं जाते। और अगर वे मिल जायें सिनेमागृह में तो तुमको भी हैरानी होगी और वे तो परेशान हो ही जायेंगे। नाटक देखने वे नहीं जाते। क्योंकि जीवन में जहां भी सुख है, रस है, वे सबके विरोधी हैं।

तो उस धर्मगुरु के मन में इच्छा तो बहुत थी कि नाटक देखूं। रोज-रोज लोग प्रशंसा करते थे कि बहुत अच्छा नाटक है। लेकिन कैसे जायें! तो उसने एक पत्र उस नाटक के मैनेजर को लिखा और उस पत्र में लिखा कि 'क्या तुम्हारे नाटकगृह में, तुम्हारे सिनेमा हाल में क्या पीछे की तरफ से कोई दरवाजा नहीं है, जिससे मैं वहां आकर नाटक देख सकूं? ताकि लोग मुझे न देख सकें और मैं नाटक देख लूं!'

उस मैनेजर ने पत्र का उत्तर दिया, 'मेरे नाट्यगृह में पीछे से दरवाजा है और अनेक बार अनेक लोग पीछे के दरवाजे से भी देखने आते हैं। ऐसे अनेक लोग आते हैं देखने जो चाहते हैं कि वे तो नाटक देखें, लेकिन लोग उन्हें न देख पायें। लेकिन जहां तक आपका संबंध है, यह निवेदन कर देना चाहता हूं, ऐसा दरवाजा तो है जो पीछे है, लेकिन ऐसा कोई भी दरवाजा इस भवन में नहीं है, जिसको परमात्मा न देखता हो!' लिखाः 'ऐसा कोई भी दरवाजा हमारे भवन में नहीं है, जिसको परमात्मा न देखता हो। मनुष्यों की आंख से छिपाना तो संभव हो जायेगा, लेकिन परमात्मा की आंख से, और खुद की आंख से छिपाना कैसे संभव होगा?'

हम खुद की आंख से अगर बहुत-सी बातें छिपाते चले जायें, तो फिर खुद को नहीं जान सकते हैं। खुद की आंख से कोई बात नहीं छिपानी चाहिए। साहस के साथ हम जैसे हैं—जैसे भी, बुरे और भले—स्वयं को वैसा ही जानना चाहिए। जब तुम अपनी सीधी-सीधी सचाई से परिचित हो जाओगे, जब तुम अपने सीधे-सीधे व्यक्तित्व को जानोगे, तो तुम्हारे जीवन में एक क्रांति हो जायेगी। क्यों? क्योंकि अगर कोई व्यक्ति स्वयं को स्पष्ट रूप से देखे तो उसमें जो भी गलतियां हैं, उनका टिकना असंभव है। वे गलतियां इसलिए टिकती हैं कि हम उन्हें छिपा लेते हैं।

कोई आदमी गलत नहीं हो सकता है, अगर वह अपने को सीधा और स्पष्ट देखने का साहस जुटा ले। अगर तुम्हें स्पष्ट दिखायी पड़े कि तुम्हारे भीतर झूठ है और तुम अच्छी-अच्छी बातों से उसे न छिपाओ, तो झूठ के साथ बहुत दिन जीना असंभव है। वैसे ही, जैसे तुम्हें दिखायी पड़े कि तुम्हारे पैर में फोड़ा है और तुम बिना इलाज के जीना चाहो। या तुम्हें जैसे दिखायी पड़ जाये, तुम्हें पता चल जाये कि तुम्हारे फेफड़े खराब हो गये हैं, क्षय रोग हो गया है, टी.बी. हो गयी है, कैंसर हो गया है, और तुम बिना इलाज के जी जाओ। अगर तुम्हें पता ही न चले, तो दूसरी बात है। लेकिन अगर तुम्हें ज्ञात हो जाये कि तुम्हारे भीतर कोई गहरी बीमारी है, तो तुम उस बीमारी के इलाज में निश्चित ही उत्सुक हो जाओगे।

अगर तुम्हें पता चल जाये कि तुम्हारे भीतर झूठ है, तो उस झूठ के साथ जीना कठिन है। क्योंकि झूठ बड़े से बड़े फोड़े से भी ज्यादा पीड़ादायी है। और झूठ बड़ी से बड़ी बीमारियों से भी बड़ी बीमारी है।

एक बार तुम्हें स्पष्ट रूप से अपने पूरे व्यक्तित्व का बोध होना चाहिए कि मेरे भीतर क्या है और क्या नहीं है। और कोई दूसरा तुम्हें नहीं बता सकता। यह तुम खुद ही निरीक्षण करोगे, तो दिखायी पड़ेगा। निरीक्षण तभी सफल होगा, जब तुम अपने को धोखा देने के लिए निरंतर श्रम न करो। अगर तुम निरंतर अपने को धोखा देने में लगे रहो, तो बहुत कठिनाई है।

एक फकीर हुआ गुरजिएफ। एक गांव से निकलता था। कुछ लोगों ने उसे गालियां दीं, अपमान भरे शब्द कहे, अभद्र बातें कहीं। उसने उनकी सारी बातें सुनीं और उनसे कहा कि 'मैं कल आकर उत्तर दूंगा!' वे लोग बहुत हैरान हुए, क्योंकि कोई गालियों का उत्तर कल नहीं देता। अगर मैं तुम्हें गाली दूं, तो तुम अभी कुछ करोगे। अगर तुम्हारा कोई अपमान करे तो तुम उसी वक्त कुछ करोगे। ऐसा तो कोई भी नहीं कहेगा शांति से कि हम कल आयेंगे और उत्तर देंगे!

गुरजिएफ ने कहा, 'मैं कल आऊंगा और उत्तर दूंगा।' उन लोगों ने कहा, 'यह तो बड़ी अजीब बात है! हमने कभी सुनी भी नहीं आज तक। कुछ तो करो, हमने इतना अपमान किया!' उसने कहा, 'पहले मैं सोचूं जाकर कि तुमने जो अपमान किया है, कहीं वह ठीक ही तो नहीं है। हो सकता है, तुमने जो बुराइयां मुझमें बतायीं, वे मुझमें हों। और अगर वे मुझमें हैं, तब मैं कल तुम्हें धन्यवाद दूंगा, क्योंकि तुमने अच्छा मेरे ऊपर उपकार किया, मेरे ऊपर कृपा की। और अगर वे मुझमें नहीं हैं, तो मैं निवेदन कर जाऊंगा कि तुम और सोचना; वे बुराइयां मैंने अपने में नहीं पायीं। झगड़े का इसमें कोई कारण नहीं है। ठीक स्थिति में मैं तुम्हें धन्यवाद दे दूंगा कि तुमने मुझ पर कृपा की। जो काम मुझे खुद करना चाहिए, वह तुमने कर दिया। तो तुम मेरे मित्र हो। और दूसरी स्थिति में मैं कह जाऊंगा कि यह मैंने खोजा, मेरे भीतर वे बुराइयां नहीं दिखीं जो तुमने बतायीं, तो तुम और विचार करना। इसमें कोई झगड़े का कारण नहीं है।'

वह दूसरे दिन आया और उसने कहा कि 'तुमने जो बातें कहीं, वे मेरे भीतर हैं। इसलिए मैं धन्यवाद देता हूं। और भी तुम्हें कोई बुराई मुझमें दिखायी पड़े। तो संकोच मत करना, मुझे रोकना और बता देना।'

ऐसा व्यक्ति होना चाहिए। ऐसा हमारा चिंतन होना चाहिए। ऐसी हमारी दृष्टि होनी चाहिए। और ऐसा आदमी बहुत दिन तक बुराइयों में नहीं रह सकता, उसका जीवन तो बदल जायेगा। और इतनी सरलता होनी चाहिए। तो ऐसा सरल मनुष्य परमात्मा से ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता। इतनी सरलता चाहिए, इतनी ह्युमिलिटी होनी चाहिए, इतनी विनम्रता होनी चाहिए मन की, इतना मुक्त मन होना चाहिए कि हम अपनी बुराइयां देख सकें, अपने ठीक-ठीक व्यक्तित्व को देख सकें और झूठे व्यक्तित्व से बचने का साहस कर सकें। नहीं तो सारे लोग करीब-करीब अभिनेता हो जाते हैं। जो उनके भीतर नहीं होता, उसको ओढ़ते हैं। जो नहीं होता है, उसको दिखलाते हैं। और तब यह चित्त जटिल और कठिन होता चला जाता है।

छोटी उम्र से अगर यह बोध तुम्हारे मन में आ जाये कि मुझे अपने भीतर कम से कम अपनी सच्चाई को जानने की सतत चेष्टा में संलग्न रहना चाहिए। जो भी मेरे भीतर है, उसे देखने का मुझमें साहस होना चाहिए। उसे ढांको न, उसे ओढ़ो न, उसे छिपाओ न।

किससे छिपायेंगे हम? दूसरों से छिपा लेंगे, लेकिन खुद से कैसे छिपायेंगे? और जिस बात को हम छिपाते चले जायेंगे, वह जिंदा रहेगी; वह मिटेगी नहीं। उसे उघाड़ें और देखें और पहचानें। और जब उसकी पीड़ा अनुभव होगी, तो उसके बदलाहट का विचार, उसको परिवर्तन करने का खयाल, उसे स्वस्थ करने की वृति भी पैदा होगी। और सबसे बड़ी बात है, इस सारी प्रक्रिया में चित्त सरल होता चला जाता है। इस सारी प्रक्रिया में चित्त में एक तरह की अदभुत शांति और सरलता आने लगती है। क्योंकि कुछ छिपाने को नहीं होता है, तो आदमी जटिल नहीं होता है।

और जो व्यक्ति इतना सजग हो कि उसे अहंकार का भाव न पैदा हो कि मैं कुछ हूं खास, उसे ऐसा दिखायी पड़ने लगे—जैसे घास-पात हैं, जैसे वृक्ष हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, जैसे और सारी दुनिया है—वैसा मैं हूं। इस सारे विराट जीवन का मैं एक छोटा-सा टुकड़ा, एक अत्यंत छोटा-सा अणु! मेरा होना कोई मूल्य नहीं रखता। मेरे होने का कोई बहुत अर्थ नहीं है। मैं बिलकुल ना-कुछ हूं।

अगर यह खयाल निरंतर बैठता चला जाये, तो एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारा मन दर्पण की भांति निर्दोष हो गया। एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारे हृदय में एक ऐसी शांति आयी है, जो अपूर्व है। एक दिन तुम पाओगे, ऐसा सन्नाटा आया है, जो तुमने कभी नहीं जाना था। एक ऐसा अज्ञात आनंद तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जायेगा, जिसकी तुम्हें अभी कोई भी खबर नहीं है। और उस दिन तुम्हारे जीवन में नये अंकुरण होंगे, तुम्हारा जीवन धीरे-धीरे परमात्मा के जीवन में विकसित होने लगेगा।

एक छोटी-सी कहानी और मैं चर्चा को पूरा करूं, फिर तुम्हें कुछ प्रश्न होंगे, इस संबंध में, तो वह मैं रात की चर्चा में बात करूंगा।

लाओत्से नाम का एक बहुत अदभुत फकीर चीन में हुआ। वह इतना विनम्र और सरल व्यक्ति था, इतना अदभुत व्यक्ति था! उसकी एक-एक अंतर्दृष्टि बहुमूल्य है। उसके एक-एक शब्द में इतना अमृत है, उसके एक-एक शब्द में इतना सत्य है, जिसका कोई हिसाब नहीं है। लेकिन आदमी वह बहुत सीधा और सरल था। खुद सम्राट के कानों तक उसकी खबर पहुंची और सम्राट ने कहा, मैंने सुना है कि लाओत्से नाम का जो व्यक्ति है बहुत अति असाधारण है, बहुत एक्सट्रा-आर्डिनरी है। असामान्य ही नहीं, बहुत असामान्य है, बहुत असाधारण है। उसके वजीरों ने कहा, 'यह बात तो सच है। उससे ज्यादा असाधारण व्यक्ति इस समय पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।'

सम्राट उसे देखने गया! सम्राट देखने गया, तो उसने सोचा था कि वह बहुत महिमाशाली, कोई बहुत प्रकाश को युक्त, कोई बहुत अदभुत व्यक्तिव का कोई प्रभावशाली व्यक्ति होगा। लेकिन जब वह द्वार पर पहुंचा, तो उस झोपड़े के बाहर ही एक छोटी-सी बगिया थी, और लाओत्से उस बगिया में अपनी कुदाली लेकर मिट्टी खोद रहा था।

सम्राट ने उससे पूछा, 'बागवान' लाओत्से कहां है?' क्योंकि यह तो कोई खयाल ही नहीं कर सकता कि यही लाओत्से होगा! फटे से कपड़े पहने हुए, बाहर मिट्टी खोद रहा हो, इसकी तो कल्पना नहीं हो सकती थी। सीधा-सादा किसान जैसा मालूम होता था। लाओत्से ने कहा, 'भीतर चलें, बैठें। मैं अभी लाओत्से को बुलाकर आ जाता हूं।' सम्राट भीतर जाकर बैठा और प्रतीक्षा करने लगा। वह जो लाओत्से था, जो बगीचे में मिट्टी खोद रहा था, वह पीछे के रास्ते से गया, झोपड़े में से अंदर आया। आकर नमस्कार किया और कहा, 'मैं ही लाओत्से हूं।' राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, 'तुम तो वही बागवान मालूम होते हो, जो बाहर था?' उसने कहा, 'मैं ही लाओत्से हूं। कसूर माफ करें! क्षमा करें कि मैं छोटा-सा काम कर रहा था। लेकिन आप कैसे आये?' उस राजा ने कहा, 'मैंने तो सुना कि तुम बहुत असाधारण व्यक्ति हो, लेकिन तुम तो साधारण मालूम होते हो!' लाओत्से बोला, 'मैं बिलकुल ही साधारण हूं। आपको किसी ने गलत खबर दे दी है।'

राजा वापस लौट गया। अपने मंत्रियों से जाकर उसने कहा कि 'तुम कैसे नासमझ हो! एक साधारण जन

के पास मुझे भेज दिया!' उन सारे लागों ने कहा, 'उस आदमी की यही असाधारणता है कि वह एकदम साधारण है।' मंत्रियों ने कहा, 'उस आदमी की यही खूबी है कि वह एकदम साधारण है।'

साधारण से साधारण आदमी भी यह स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि वह साधारण है। उस आदमी की यही खूबी है, यही विशिष्टता है कि उसने कुछ भी असाधारण होने की इच्छा नहीं की है, वह एकदम साधारण हो गया है।

राजा दुबारा गया। और उसने लाओत्से से पूछा कि 'तुम्हें यह साधारण होने का खयाल कैसे पैदा हुआ? तुम साधारण कैसे बने?' उसने कहा, 'अगर मैं कोशिश करके साधारण बनता, तो फिर साधारण बन ही नहीं सकता था, क्योंकि कोशिश करने में तो आदमी असाधारण बन जाता है। नहीं, मुझे तो दिखायी पड़ा, और मैं एकदम साधारण था। मैंने अनुभव कर लिया—बना नहीं। मैंने जाना कि मैं साधारण हूं; मैं बना नहीं हूं साधारण। क्योंकि बनने की कोशिश में तो आदमी असाधारण बन जाता है। मैं बना नहीं, मैंने तो जाना जीवन को—पहचाना।

मैंने पाया; मुझे न मृत्यु का पता है, न जन्म का पता है। मैंने पाया; यह श्वास क्यों चलती है, यह मुझे पता नहीं है, खून क्यों बहता है, मुझे पता नहीं है। मुझे भूख क्यों लगती है, मुझे प्यास क्यों लगती है—यह मुझे पता नहीं है। मैंने पाया, मैं तो बिलकुल अज्ञानी हूं। फिर मैंने पाया कि मैं तो बिलकुल अशक्त हूं—मेरी कोई शक्ति नहीं। फिर मैंने पाया; मैं तो कुछ विशिष्ट नहीं हूं। जैसी दो आंखें दूसरों को हैं, वैसी दो आंखें मेरे पास हैं। दो हाथ दूसरों के पास हैं, वैसे दो हाथ मेरे पास हैं। मैं तो एक अति सामान्य व्यक्ति हूं, यह मैंने देखा, पहचाना। मैं साधारण हूं, मैं बड़ा नहीं हूं। यह तो देखा और समझा और मैंने पाया कि मैं साधारण हूं।

लेकिन यह घटना ऐसे घटी कि मैं एक जंगल गया था—लाओत्से ने कहा—और वहां मैंने लोगों को लकड़ियां काटते देखा। बड़े-बड़े दरख्त काटे जा रहे थे। ऊंचे-ऊंचे दरख्त काटे जा रहे थे। सारा जंगल कट रहा था। बड़े दरख्त लगे हुए थे और जंगल कट रहा था, लेकिन बीच जंगल में एक बहुत बड़ा दरख्त था। इतना बड़ा दरख्त था कि उसकी छाया इतने दूर तक फैल गई थी, वह इतना पुराना था और प्राचीन मालूम होता था कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां विश्राम कर सकती थीं, इतनी उसकी छाया थी। तो मैंने अपने मित्रों से कहा कि जाओ और पूछो कि इस दरख्त को कोई क्यों नहीं काटता है? यह दरख्त इतना बड़ा कैसे हो गया? जहां सारा जंगल कट रहा है, वहां इतना बड़ा दरख्त कैसे? जहां सब दरख्त ठूंठ रह गए हैं, जहां नये दरख्त काटे जा रहे हैं रोज, वहां यह इतना बड़ा दरख्त कैसे बच रहा है? वह क्यों लोगों ने छोड़ दिया? तो मेरे मित्र, और मैं, वहां गये। और मैंने वृद्ध बढ़इयों से पूछा, जो लकड़ियां काटते थे कि 'यह दरख्त इतना बड़ा कैसे हो गया?' उन्होंने कहा, 'यह दरख्त बड़ा अजीब है। यह दरख्त बिलकुल साधारण है। इसके पत्ते कोई जानवर नहीं खाते। इसकी लकड़ियों को जलाया नहीं जा सकता, वे धुआं करती हैं। इसकी लकड़ियां बिलकुल एड़ी-टेढ़ी हैं, इनको काटकर फर्नीचर नहीं बनाया जा सकता। द्वार-दरवाजे नहीं बनाये जा सकते। दरख्त बिलकुल बेकार है, बिलकुल साधारण है। इसलिए इसको कोई काटता नहीं। लेकिन जो दरख्त सीधा है, और ऊंचा गया है, उसे जाता है, उसके खंभे बनाये जाते हैं।'

लाओत्से हंसा और वापस लौट आया। और उसने कहा, उस दिन से मैं समझ गया कि अगर सच में

तुम्हें जीवन में बड़ा होना है, तो उस दरख्त की भांति हो जाओ, जो बिलकुल साधारण है। जिसके पत्ते भी अर्थ के नहीं, जिसकी लकड़ी भी अर्थ की नहीं। तो उस दिन से मैं वैसा दरख्त हो गया। बेकार। मैंने फिर सारी महत्वाकांक्षा छोड़ दी। बड़ा होने की, ऊंचा होने की, असाधारण होने की सारी दौड़ छोड़ दी, क्योंकि मैंने पाया कि जो ऊंचा होना चाहेगा, वह काटा जायेगा। मैंने पाया कि जो बड़ा होना चाहेगा, वह काट कर छोटा कर दिया जायेगा। मैंने पाया है कि प्रतियोगिता में, प्रतिस्पर्धा में महत्वाकांक्षा में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं है। और तब मैं अति साधारण—जैसा मैं था, न कुछ...चुपचाप वैसे ही बैठा रहा। और जिस दिन मैंने सारी दौड़ छोड़ दी, उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर कोई अदभुत चीज का जन्म हो गया है। उसी दिन मैंने पाया कि मेरे भीतर परमात्मा के अनुभव की शुरुआत हो गयी है।

जो व्यक्ति साधारण से साधारण और सरल से सरल होने को राजी हो जाता है, सत्य खुद उसके द्वार आ जाता है। और जो व्यक्ति असाधारण होने की, विशिष्ट होने की, बड़ा होने की, महत्वाकांक्षी होने की, अहंकार तृप्त करने की दौड़ में पड़ जाता है, उसके जीवन में असत्य घना से घना होता जाता है और सत्य से उसके संबंध सदा के लिए क्षीण होते जाते हैं। अंततः उसके पास झूठ का एक ढेर रह जाता है और सत्य की कोई भी किरण नहीं। लेकिन जो सरल हो जाता है, सीधा, साधारण, सामान्य, उसके जीवन में झूठ की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। उसके जीवन में सत्य की किरण का जन्म होता है और सारा अंधकार समाप्त हो जाता है।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं सरलता के लिए, इन पर विचार करना, इन पर सोचना। अपने जीवन में निरीक्षण करना और देखना कि क्या तुम्हारे जीवन में सरलता बढ़ रही है या जटिलता बढ़ रही है?

अगर जटिलता बढ़ रही हो, तो समझना कि तुमने गलत मार्ग चुना है। और जीवन के अंत में तुम्हें विफलता मिलेगी, दुख मिलेगा, पीड़ा, चिंता के अतिरिक्त तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं आयेगा।

और अगर सरलता का मार्ग तुमने जीवन में चुना और स्मरणपूर्वक रोज सरल से सरल होते गये, तो तुम पाओगे कि बचपन में जो आनंद था, उससे बहुत बड़ा आनंद निरंतर बढ़ता जायेगा। और बुढ़ापा तुम्हारा एक अदभुत गौरव की भांति होगा, जिसमें आनंद की पूरी छाया, जिसमें आनंद की पूरी अनुभूति, जिसमें एक आंतरिक सौंदर्य, सत्य का एक बल, और जिसमें आंतरिक रूप से अमृत का अनुभव—उसका अनुभव, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है—उपलब्ध होता है।

इन पर तुम विचार करना, इन पर तुम सोचना और अपने जीवन से तौलना कि तुम्हारे जीवन की दिशा क्या है।

स्मरण रहे, जो व्यक्ति भी परमात्मा की दिशा के प्रतिकूल जाता है, वह अपने ही हाथों अपने को नष्ट कर लेता है। और जो व्यक्ति परमात्मा की दिशा में चरण उठाता है, वह धीरे-धीरे विकसित होता है, उसके भीतर अनुभूतियां घनी होती हैं, उसके जीवन में अर्थ आता है; उसके जीवन में बहुत आंतरिक संपदा आती है और अंततः उसे कृतार्थता और धन्यता का अनुभव होता है।

इन बातों को इतने प्रेम और शांति से तुम सुनते रहे हो, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। जो तुम्हारे प्रश्न हों, वह मैं रात उत्तर दे सकूंगा।

साधना शिविर, तुलसीश्याम, सौराष्ट्र; दिनांक 6 फरवरी, 1966
तीसरा प्रवचन
ध्यान मंदिरः मनुष्य का मंगल

प्रश्नः मैं यह पूछना चाहता हूं कि हम लोग जो फंड्स इकट्ठा करने का सोच रहे हैं कि पंद्रह लाख रुपये के करीब इकट्ठा करें, तो इसके लिए आपका मकसद क्या है? ऐसा करने से जीवन जागृति केंद्र का सब जगह से क्या फायदा है, इस बारे में आप समझायें।

बहुत-सी बातें हैं। एक तो जैसी स्थिति में हम आज हैं, ऐसी स्थिति में शायद दुबारा इस मुल्क का समाज कभी भी नहीं होगा। इतने संक्रमण की, ट्रांजीशन की हालत में हजारों, सैकड़ों वर्षों में एकाध बार समाज आता है—जब सारी चीजें बदल जाती हैं, जब सब पुराना नया हो जाता है। ये क्षण सौभाग्य भी हो सकते हैं और दुर्भाग्य भी। जरूरी नहीं है कि नया हर हालत में ठीक ही होता है। पुराना तो हर हालत में गलत होता है, लेकिन नया हर हालत में ठीक नहीं होता। और जब पुराना टूटता है, तो हजार विकल्प, आल्टरनेटिव्स होते हैं। दुर्भाग्य बन सकता है, अगर गलत विकल्प चुन लिया। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए।

मैं पुराने के हर हालत में विरोध में हूं। लेकिन नये, हर नये के हर हालत में पक्ष में नहीं हूं। पुराना तो जाना चाहिए, उसे क्षण भर रुकने की कोई जरूरत नहीं है। असल में हम पुराना ही उसे कहते हैं, जो अपने समय से ज्यादा रुक गया है, जिसे अब नहीं होना चाहिए था। लेकिन जब पुराने का टूटने का क्षण आता है, तो हमारी जैसी कौमें बहुत मुश्किल में पड़ जाती हैं, जिन्होंने पुराने को कभी तोड़ा ही नहीं। तो हम पुराने की तोड़-फोड़ भी बहुत स्वस्थ चित्त से न कर सकेंगे। नहीं; पुराने को जब तोड़ेंगे तो फीवरिश हालत और बुखार की हालत में ही तोड़ पायेंगे। लेकिन ध्यान रहे, बुखार की हालत में पुराना तो टूट सकता है, लेकिन नया निर्मित नहीं हो सकता। नये के निर्माण के लिए बड़ा शांत और स्वस्थ चित्त चाहिए।

तो इस समय सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि हम सब क्या करें और क्या न करें। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि कुछ भी करने का निर्णय लेने के पहले मुल्क के पास एक शांत, स्वस्थ चित्त हो। यह तो दूसरी बात है। हम फिर क्या करेंगे और किस रास्ते पर जायेंगे।

सवाल ऐसा नहीं है कि हम एक चौराहे पर खड़े हैं अपनी जिंदगी की गाड़ी को लेकर। सवाल यह नहीं है कि हम किस रास्ते पर मुड़ें। सवाल यह है कि ड्राइवर होश में है या नहीं। यह ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि ड्राइवर बेहोश हो, तो कोई भी रास्ता खतरे में ले जानेवाला होगा। और चुनाव कौन करेगा कि रास्ता कौन-सा ठीक है?

सब तरफ—चाहे राजनीति हो, चाहे नीति हो, चाहे साहित्य हो, चाहे कला हो, जीवन की सब दिशाओं में पुराना टूटने के करीब है, टूट रहा है। हम कुछ न भी करेंगे, तो भी टूट जायेगा।

नये का चुनाव करना ही होगा। यानी अभी कुछ ऐसा नहीं है कि नये का चुनाव करने में हमें कोई चुनाव

करना है, यह बिलकुल मजबूरी की हालत खड़ी हो गयी है कि वह चुनना ही पड़ेगा। पुराने ने अपने होने के सारे कारण खो दिये हैं। अब इसका कोई आधार नहीं रह गया है।

लेकिन, दो तरह के लोग हैं मुल्क में—एक वे हैं जो डर के कारण पुराने को बनाये रखना चाहते हैं; कम से कम परिचित है, पहचाना हुआ है। एक वे हैं, जो किसी भी कीमत पर कुछ भी नया आये, पुराने को तोड़ देने को आतुर हैं कि कुछ भी नया आ जायेगा, तो ठीक होगा। मैं उन दोनों में से नहीं हूं। और इसलिए मेरी तकलीफ बहुत ज्यादा है।

मुझे लगता है, नया तो चुनना है—चुनना ही पड़ेगा। हमें चुनना चाहिए लेकिन कौन चुनेगा? और इधर सैकड़ों वर्षों से यह भूल होती रही है। जैसे कि हम उदाहरण के लिए लें।

सन उन्नीस सौ सैंतालीस से पहले कोई पचास साल पूरा मुल्क इस आशा में जी रहा था कि आजादी आयेगी और सब ठीक हो जायेगा। और जिनको हम बहुत बुद्धिमान लोग कहें, उन्होंने भी मुल्क को यही समझाया कि सारी परेशानी का कारण अंग्रेज हैं। अंग्रेज गये कि सब परेशानी गयी। सरासर झूठी यह बात थी। लेकिन उन्होंने शायद झूठ समझा, लेकिन वह उनकी बुद्धि को दिखायी न पड़ रहा था। तो उन्नीस सौ सैंतालीस से हमने सारी आशा टिकाकर रखी कि आजादी आयी कि सब आ जायेगा। अंग्रेज गया कि सब परेशानी गयी! क्योंकि परेशानी का कारण वह है। गुलामी सब परेशानी का कारण है, वह हट गयी तो सब ठीक हो जायेगा। इसलिए पंद्रह अगस्त की सुबह जब हम उठे, तो हमने देखा कि सब ठीक हो गया है कि नहीं हो गया है! लेकिन वह कुछ भी ठीक नहीं हुआ था।

फिर बीस-बाइस साल गुजर गये। अब हम जानते हैं कि अंग्रेज हमारी सारी मुसीबत का कारण न था। एकाध कारण रहा होगा, और वह एकाध कारण भी इसीलिए मौजूद था कि हमारे बाकी मुसीबत के कारण उसको मौजूद रखने में सहारा दे रहे हैं। वे सब के सब कारण मौजूद हैं। लेकिन मुल्क के दिमाग में फिर कोई फर्क नहीं पड़ा।

अब जैसे मुल्क कह रहा है कि समाजवाद आ जायेगा, तो सब ठीक हो जायेगा। अब हम फिर वही पागलपन की बात कर रहे हैं। समाजवाद आकर भी फिर हम ऐसे ही चौंककर खड़े रह जायेंगे कि कुछ भी न हुआ! जैसे हमने पीछे यह समझा था कि अंग्रेज की गुलामी सारे उपद्रव का कारण है, जबकि यह बात बिलकुल सच न थी।

बहुत मुश्किल है यह बात कहना कि अगर अंग्रेज की गुलामी न होती, तो हम इतनी भी अच्छी हालत में न होते, जितनी अच्छी हालत में अंग्रेज हमें छोड़कर गए हैं। क्योंकि अंग्रेजों ने जब इस मुल्क को अपने हाथ में लिया था तो हमारी हालतें इतनी बदतर थीं कि जिसकी हमें कोई कल्पना नहीं है। वे जब छोड़ गये हैं, तो उससे बहुत बेहतर हालत में छोड़ गये हैं।

अब हमें एक खयाल लग रहा है कि पूंजीवाद किसी तरह नष्ट हो जाये; सारी बीमारी की जड़ वह है। उसे नष्ट करके हम फिर एक मुसीबत में पड़ेंगे। हमको लगेगा कि पूंजीवाद तो नष्ट हो गया, लेकिन जो सपने संवारे थे, वे फिर भी नहीं आये। वे नहीं आ सकते। ऐसे नहीं आते।

मुल्क के पास एक विचार करनेवाला मस्तिष्क नहीं है कि चीजों को उनकी गहराई में देखे और सोचे

और समझे। और चीजें इतनी अन्यथा हैं, जिसका हमें एक तरफ से पता नहीं चलता। अगर एक बड़ा मकान है और उस मकान के चारों तरफ छोटे-छोटे झोपड़े हैं, तो कोई भी आदमी चौरस्ते पर खड़े होकर यह कह सकता है कि झोपड़े को छोटा कर-करके यह मकान बड़ा हो गया है। और यह बात सबको ठीक मालूम पड़ेगी कि बात ठीक है। लेकिन यह बात बिलकुल ही गलत है और उलटी बात सच है।

ये दस छोटे झोपड़े जिंदा हैं सिर्फ इसलिए कि एक बड़ा मकान बीच में उठा है, नहीं तो ये जिंदा भी नहीं रहते, ये होते ही नहीं। क्योंकि एक बड़ा मकान जब उठता है, तो एक राज बनता है, एक इंजीनियर काम करता है, मजदूर मिट्टी ढोता है, कोई गड्ढा खोदता है, कोई लकड़ी काटता है। एक बड़ा मकान जब बनता है, तो उसके आसपास पचास छोटे मकान बड़ा मकान बनाने की वजह से बनते हैं। लेकिन चौरस्ते पर समझाने वाला नेता कहेगा कि ये छोटे मकान, इसलिए रह गये हैं कि यह मकान बड़ा बन गया है। अगर यह बड़ा मकान न होता, तो तुम्हारे पास भी बड़े मकान होते। लेकिन आप ध्यान रखिये, जिंदगी का तर्क बिलकुल उलटा है। अगर यह बड़ा मकान न होता तो ये झोपड़े भी न होते। बड़ा मकान तो होता नहीं, ये झोपड़े भी नहीं हो सकते थे।

बुद्ध के जमाने में दुनिया की आबादी दो करोड़ थी केवल, और अगर गांधी जी जैसे लोगों की बात मान ली जाये, तो अब भी मुल्क की आबादी दो ही करोड़ हो सकती है, उससे ज्यादा नहीं हो सकती है। आज हिंदुस्तान पाकिस्तान मिलकर सत्तर करोड़ हैं। ये सत्तर करोड़ लोग कैसे जिंदा हैं? पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा की है। लेकिन इसे देखने के लिए कोई बुखार से भरा हुआ चित्त नहीं चाहिए। इसे देखने के लिए एक बहुत स्वस्थ, शांत चित्त चाहिए। और तब—तब मैं मानता हूं कि पूंजीवाद का हम उपयोग कर सकते हैं, समाजवाद लाने के लिए।

और अभी हम पूंजीवाद से लड़ेंगे, समाजवाद को लाने के लिए। और पूंजीवाद को तोड़ेंगे, समाजवाद को लाने के लिए। जबकि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद जब पूरी तरह सफल होता है, तो अनिवार्यरूपेण समाजवाद में परिणत होता है। समाजवाद जो है, पूंजीवाद का अगला कदम है। लेकिन उसके लिए तो एक बड़ी समझ और बड़ा शांत चित्त चाहिए। यह एक उदाहरण के लिए मैंने बात कही। ऐसे मुल्क की पूरी जिंदगी सब तरफ से उलझ गयी है—चाहे राजनीति हो, चाहे धर्म हो, चाहे नीति हो, चाहे कुछ भी हो।

फिर मेरा यह आग्रह नहीं है बहुत कि हम इसकी फिक्र करें कि जो ठीक हमें लगता है वह मान लिया जाये। तो ज्यादा फिक्र इस बात की करने की है कि ठीक कुछ समझा जा सके, इस योग्य चित्त पैदा किया जा सके। अगर वह चित्त यही ठीक समझे कि ऐसा करने से ठीक हो जायेगा, तो वैसा किया जायेगा। लेकिन ठीक और गलत का निर्णय करने वाला शांत मन मुल्क के पास नहीं है।

और जरूरी नहीं है कि पूरे मुल्क के पास शांत मन हो, तब कुछ हो। जिंदगी बहुत थोड़े से लोग चलाते हैं—बहुत थोड़े-से लोग जिंदगी को चलाते हैं। अगर हम मनुष्य-जाति में एक दो सौ नाम काट दें, तो मनुष्य-जाति वहां होगी, जहां कि दो लाख साल पहले आदमी था। झाड़ से उतरना भी नहीं सीखा होगा आदमी ने! एक दो सौ आदमियों की प्रतिभा सारे जगत को गति दे जाती है।

इधर मेरे मन में यह निरंतर चलता है कि देश के सारे प्रमुख नगरों में ध्यान केंद्र हों, जहां हम इसकी

चिंता नहीं कर रहे हों कि क्या ठीक है, जहां हम इसकी चिंता कर रहे हों कि कुछ लोग क्लैरिटी को उपलब्ध हो रहे हैं, उनका मन शांत हो रहा है और चीजों को देखना शुरू कर रहा है कि चीजें कैसी हैं। न उनका पक्षपात काम कर रहा है, न उनके अपने कोई पूर्वाग्रह काम कर रहे हैं। उनके पास सिर्फ ठीक देखनेवाली बुद्धि है, उससे वे देखना शुरू कर रहे हैं। अगर मुल्क के सारे बड़े नगरों में हम थोड़ी-सी जमात भी चीजों को ठीक देखनेवाली पैदा कर सकें, तो इस संक्रमण के काल में उसके बहुमूल्य उपयोग होंगे। और मैं मानता हूं, शायद वह सर्वाधिक मूल्यवान बात सिद्ध हो।

तो इसलिए कि ठीक शांत चित्त के लिए हम हवा, भूमि और व्यवस्था दे सकें और उस व्यवस्था जुटाने में बहुत-सी बातें होंगी। जैसा ध्यान केंद्र के लिए कहा, मेडिटेशन हाल के लिए कहा। एकदम जरूरी है कि सारे बड़े नगरों में ऐसे भवन हों, जो न हिंदू के हों, न मुसलमान के हों, न ईसाई के हों। जो सभी मनुष्यों के लिए हों और जो भी वहां शांत होना चाहता है, उसके लिए हों। उन भवनों में शांति के लिए सब तरह की व्यवस्था की जा सकती है। छोटे बच्चों के लिए वहां अलग व्यवस्था की जा सकती है। उस तरह की स्थिति वहां पैदा की जा सकती है, जो छोटे बच्चों को ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सके। और हजार उपाय किये जा सकते हैं। उपाय का मामला ऐसा है कि अगर आज कोई पश्चिम की पेंटिंग उठाकर देखे, तो उसे ऐसा लगेगा कि जरूर रुग्ण चित्त से पैदा हुई है।

अभी मैं पूना में जिस घर में मेहमान था, वहां दो पेंटिंग वे ले आये थे। वे काफी पैसे खर्च करके लाये थे कि पेंटिंग अच्छी हैं। उन्होंने मुझसे पूछा, 'आप क्या कहते हैं?' तो मैंने कहा कि 'मैं कुछ नहीं कहूंगा। तुम इस पेंटिंग के पास आधा घंटा बैठकर देखते रहो और आधा घंटा बाद तुम्हारा मन कैसा होता है, वह मुझे बता दो।'

आधा घंटा तो बहुत दूर है, वह जो पेंटिंग थी, उसे पांच मिनट भी गौर से देखने में आपका सिर घूमने लगेगा। और ऐसा लगेगा कि आप पागलखाने में हैं। उसका टोटल इफेक्ट पेंटिंग का जो है, वह सूदिंग नहीं है। अगर पिकासो की पेंटिंग देखकर थोड़ी देर उस पर कोई ध्यान करे, तो वह पागल हो सकता है, शांत नहीं। लेकिन अगर बुद्ध की मूर्ति पर बैठकर कोई पांच मिनट ध्यान करे, तो वह पागल भी हुआ तो ठीक और शांत होकर लौटेगा।

मूर्ति के माध्यम से या पेंटिंग के माध्यम से हमने शांति का इंतजाम किया है। दरवेश फकीरों के नृत्य...और मैं चाहता हूं कि ऐसे हाल होने चाहिए सारे मुल्क में। नाच तो हम रहे हैं, सारी दुनिया नाच रही है और दुनिया को नाचने से नहीं रोका जा सकता । और जिसको हम नाचने से रोकेंगे, उसको भारी नुकसान शुरू हो जायेंगे। लेकिन नाच ऐसा हो सकता है कि नाचने वाला नाचने में शांत हो और ऐसा भी हो सकता है कि नाचनेवाला अशांत हो। मूवमेंट, रिदम की बात है। ऐसा नाच हो सकता है, जो कामुकता से भर दे, और ऐसा नाच हो सकता है, जो कामुकता के बाहर कर दे। देखनेवाला भी देखते-देखते कामुक हो जा सकता है।

अभी एक लड़की इंग्लैंड से लौटी और उसने मुझे कहा कि वह हिप्पीज के एक नाटक को देखने गयी। तो वे नाच रहे हैं और फिर नाचते-नाचते उन्होंने कपड़े फेंक दिये हैं और नग्न हो गये हैं। और उनसे मोहाविष्ट होकर हाल में कम से कम बीस परसैंट लड़के और लड़कियों ने, युवक और युवतियों ने कपड़े फेंक दिये और

वे नंगे हो गये; हाल में अंदर, देखनेवाले। तो वह कह रही थी कि लेकिन मैं बहुत हैरान हो रही थी कि यह क्या हो रहा है! क्योंकि यहां तक भी ठीक है कि कोई नाच रहा है, नंगा हो गया है, ठीक है। लेकिन हाल में देखने वाले को क्या हो गया है! नहीं, नाच आपके भीतर कुछ करेगा! जो भी आप देख रहे हैं, वह आपके भीतर कुछ करेगा।

दरवेश फकीरों के नृत्य हैं। अगर कोई उनको आधा घंटे तक देखते रहे, तो वह पायेगा कि सारे मन की चिंता विलीन हो गयी है, क्योंकि वह जो मूवमेंट है, वह जो गति है, इतने वैज्ञानिक हिसाब से निर्मित की गयी है कि आपके मन को थपकी देती हो, शांत करती हो।

तो मेरे लिए मेडिटेशन हाल बहुत और अर्थ रखता है। वहां हम उस तरह के चित्रों की व्यवस्था करें कि जिन्हें देखकर मन शांत होता हो और स्वच्छ होता हो। उस तरह के नृत्यों की व्यवस्था करें, जिन्हें देखकर मन शांत होता हो, स्वस्थ होता हो। उस तरह के गीतों की व्यवस्था करें, उस तरह के संगीत की व्यवस्था करें, उस तरह की वीणा वहां बजती हो, उस तरह की शिक्षक तरंगें वहां पैदा हों। बच्चा भी वहां हो, बूढ़ा भी हो, पति भी हो, पत्नी भी हो। जीवन के सारे पहलुओं को हम वहां छूना शुरू करें।

पुरानी दुनिया ने भी बहुत से ध्यान-भवन पैदा किये थे, लेकिन वे सब पलायनवादी थे, एस्केपिस्ट थे। अगर कोई आदमी मंदिर में जाता हो, तो वह जिंदगी से भागना शुरू हो जायेगा। मैं ऐसे मंदिर चाहता हूं, जो जिंदगी में और गहराई में ले जाते हों, जिंदगी से भगाते न हों।

तो बड़े से बड़ी बात यह है कि ऐसा केंद्र, जहां जीवन की सब दिशाओं को छूने के लिए, और सब दिशाओं से काम करने के लिए, और मनुष्य को सब तरफ से शांति में डुबकी लगाने के लिए हम पूरी व्यवस्था दें। वह व्यवस्था दी जा सकती है। उसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। जिस तरकीब से हमने आदमियों को अशांत किया है, वह भी व्यवस्था है। वह भी हमारा इंतजाम है, जिसने यह पागलपन पैदा कर दिया है।

तो ध्यान केंद्र चाहिए। पैसे की बात मैं नहीं जानता। वह ईश्वर बाबू खुद समझें और आप समझें। उससे मुझे मतलब नहीं है। इतना मैं जानता हूं कि अगर इस तरह की कुछ व्यवस्था जुटा पाते हैं आप, तो आप आने वाले इस मुल्क की समस्त पीढ़ियों के लिए कुछ काम कर सकेंगे, अपने लिए भी। कुछ ऐसा काम जिसका स्थायी परिणाम देश की चेतना पर हो सकता है।

ऐसा साहित्य चाहिए। धर्म के नाम पर हमारे पास जो साहित्य है, बिलकुल कचरा है। उस साहित्य की वजह से जिनमें थोड़ी बुद्धि है, वे धार्मिक नहीं हो पायेंगे। यानी हमारा जो धार्मिक साहित्य है, उस साहित्य को पढ़ने के लिए बुद्धिहीनता बहुत अनिवार्य आवश्यकता है। तो ऐसा साहित्य चाहिए, जो मुल्क की प्रतिभा को छुये, स्पर्श करे। मुल्क की प्रतिभा जिसमें पाये कि कुछ रस हो सकता है। उस साहित्य के लिए ऐसे केंद्र, प्रचार और विस्तार के लिए आधार बन सकें।

अब हमारे पास बहुत नये साधन हैं, जो कभी भी न थे। दुनिया में कभी भी न थे, आज हमारे पास हैं। लेकिन उन साधनों का प्रयोग अभी हम मनुष्य के मंगल के लिए नहीं कर पा रहे हैं। बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं था, सिवाय इसके कि वे पैदल घूमें, चालीस साल तक। लेकिन चालीस साल पैदल बुद्ध घूमे, तो भी बिहार के बाहर न जा सके, सिर्फ एक दफा बनारस तक गये। इतनी बड़ी दुनिया है। बुद्ध के पास उपाय नहीं

था। अगर हमारे जैसे आदमी को भी बुद्ध जैसा ही गुजरना पड़े, तो ढाई हजार साल बेकार गये। और जहां तक मामला ऐसा है कि बुद्ध जितना काम कर सके, उससे ज्यादा काम मैं भी नहीं कर सकूंगा।

लेकिन ढाई हजार साल में जो सारी टेक्नालाजी विकसित हुई है, उसका क्या मतलब है! उसका मतलब यह है कि फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में मैं नहीं गया हूं, वहां भी मेरी बात पहुंच जाये। फिल्म ऐसी हो सकती है कि जिस गांव में नृत्य की वह व्यवस्था न कर सकेंगे, जो हमने बंबई में की है, तो फिर वह नृत्य भी वहां पहुंच जाये। जरूरी नहीं है कि हम हर गांव में पेंटिंग्स पहुंचा सकें, लेकिन बंबई में जो पेंटिंग्स लगाये हैं हमने अपने ध्यान कक्ष में, उनको पूरा मुल्क फिल्म के जरिये देख ले। कोई वजह नहीं है, पूरा मुल्क ही नहीं, पूरी दुनिया भी सम्मिलित हो जाये।

रेडियो का माध्यम है, टेलीविजन का माध्यम है। अब हमारे पास ऐसे माध्यम हैं, जिनका कि पुराना जगत उपयोग ही नहीं कर सकता था, उसके पास नहीं थे। हमारे पास हैं। हम उपयोग कर रहे हैं। लेकिन मंगल के लिए उपयोग नहीं हो रहा है, अमंगल के लिए उपयोग हो रहा है। अभी मुझे मिलते हैं लोग, वे कहते हैं, सिनेमा बंद करो, यह बंद करो। बंद करने का सवाल नहीं है। जो माध्यम जगत में आ गया है, वह बंद नहीं होगा। इसमें सवाल बंद करने का नहीं है, सवाल उसके उपयोग का है, उसका कैसा उपयोग हो।

सिनेमा जैसे शक्तिशाली माध्यम का एकदम ही गलत उपयोग हुआ जा रहा है। हमने एक कहावत सुनी है—फ्रेंच में एक कहावत है कि जब भी कोई आविष्कार होता है, तो शैतान सबसे पहले उस पर कब्जा कर लेता है। और जिन्हें हम अच्छे लोग कहते हैं, वे खड़े होकर देखते रहते हैं और चिल्लाते रहते हैं कि बड़ा बुरा हुआ जा रहा है, बड़ा बुरा हुआ जा रहा है। लेकिन तुम्हें कौन रोक रहा है कि तुम उसको कब्जे में मत कर लो। लेकिन वे यही काम करते रहेंगे।

वे साधु सम्मेलन करके तय करते रहेंगे कि रद्दी पोस्टर नहीं लगने चाहिए। लेकिन अच्छा पोस्टर लगाने से तुमको कौन रोक रहा है? और तुम इतने अच्छे पोस्टर क्यों नहीं लगा पाते हो कि रद्दी पोस्टर अपने आप उखड़ जायें और डूब जायें; लेकिन यही उनकी फिक्र है कि रद्दी पोस्टर नहीं होने चाहिए। रद्दी फिल्म नहीं होनी चाहिए। तुम्हें अच्छी फिल्म बनाने से कौन रोक रहा है? लेकिन हमारी कल्पना में नहीं आता।

हम सोच ही नहीं सकते कि बुद्ध जैसा आदमी अगर फिल्म में खड़ा किया जा सके, तो क्या परिणाम है। हम कहेंगे, पहले तो बुद्ध खड़े नहीं होंगे उस फिल्म में, बहुत मुश्किल है। अगर बुद्ध बोल सकते हैं, चल सकते हैं, तो बुद्ध का चलना और बोलना फिल्म के द्वारा पूरा मुल्क क्यों नहीं देख सकता? सारा मुल्क देख सकता है। लेकिन बुरा आदमी सबसे पहले कब्जा कर लेता है और अच्छा आदमी सिर्फ चिल्लाता रहता है।

अच्छा आदमी सदा से इंपोटेंट है। वह बिलकुल नपुंसक है, वह कुछ नहीं करता है; वह सिर्फ चिल्लाता रहता है। वह कहता रहता है कि यह बुरा हो रहा है, वह बुरा हो रहा है। वह करता कुछ भी नहीं । बुरा आदमी आगे जाता है, अच्छा आदमी बैठकर इतना ही कहता रहता है कि बुरा हो रहा है। यह नहीं होना चाहिए।

तो मेरी समझ में अच्छे आदमी को वीर्यशाली बनने की जरूरत है। बुराई से जो लड़ाई है, वह इस बातचीत से नहीं हो सकती है। जिन-जिन माध्यम का बुराई उपयोग करती है, उन-उन माध्यम का भलाई को भी उपयोग करना चाहिए।

अब जैसे मैं हैरान हूं; अब मैं जाऊंगा, एक-एक गांव घूमूंगा और भटकूंगा। अगर मैं किसी गांव में जाऊं और दस हजार लोग भी मुझे सुन लें, तो यह समद्र में रंग डालने जैसा है, समुद्र कभी रंगमय होने वाला नहीं है। इतना बड़ा समुद्र है। अब मैं जिंदगी भर मेहनत करूं, तो भी इस मुल्क में पचास करोड़ लोगों के सामने नहीं हो सकता हूं।

लेकिन अब कोई वजह नहीं है कि आमने-सामने क्यों नहीं हो सकता हूं। अब हो सकता हूं। जो पहले कभी संभव नहीं था। अब संभव हो सकता है।

तो नवीनतम टेक्नालाजी का और साइंस का धर्म कैसे उपयोग करे, इस संबंध में न केवल चिंतन, बल्कि व्यवस्था जुटाने की बात है। वह तो दो लाख तो बहुत छोटी बात है, उसको शुरू मानकर चलना चाहिए। लेकिन अगर इसका उपयोग हो सके, तो बड़ा क्रांतिकारी काम हो सकता है।

अब बच्चे हैं। बच्चे फिल्म देख रहे हैं। उनको आप मना कर रहे हैं। मैं नहीं मानता कि उनको मना करने की जरूरत है। उनको जरूर फिल्म दिखानी चाहिए। बच्चे फिल्म देखेंगे। लेकिन कोई कारण नहीं है कि ऐसी फिल्म बच्चे क्यों न देखें कि जो उनकी जिंदगी में रोशनी बनकर आये, आ सकती है। ऐसा गीत क्यों न गायें, वे भी वे गा सकते हैं। उनको गीत चाहिए।

अब बच्चे ट्विस्ट कर रहे हैं, नाच रहे हैं या कुछ और कर रहे हैं—यह सब चलता है। मैं मानता हूं कि बच्चों को नृत्य होना ही चाहिए, क्योंकि जो बच्चा नाच नहीं सकता, वह बूढ़ा हो गया। उसको नाचना चाहिए। लेकिन वे चिल्लायेंगे, 'नहीं नहीं, यह नाच ठीक नहीं है।' लेकिन ठीक नाच कहां है? या तो नाच है ही नहीं, या गलत नाच है। मैं आपसे कहता हूं, इन दोनों में गलत नाच ही चुना जायेगा। कोई उपाय नहीं है। ठीक नाच कहां है? वह ठीक नाच सामने ले आइए और गलत नाच अपने आप विदा होने लगेगा। उसे फीका कर डालने की जरूरत है। यानी मेरा मानना है, भलाई जो है, अब तक भी आकर्षक नहीं हो पायी है। बुराई अभी भी आकर्षक है। यह आश्चर्यजनक बात है कि बुराई इतनी आकर्षक हो और भलाई में कोई आकर्षण नहीं है।

आदमी जब मरने लगता है, तब वह मंदिर की तरफ जाता है, बाकी वह नहीं जाता। हां, किसी टाकीज का नाम 'मराठामंदिर' हो, वह बात अलग है। वहां जाता हो, वह बात अलग है। तो मंदिर जब उम्र ढल जाती है, और मरने के करीब होता है, तब आता है। आकस्मिक नहीं है। उसे पुकारेगा वह—उसके प्राणों को। जब वह थकने लगता है और हारने लगता है, जब सब आकर्षण विदा होने लगते हैं, तब कहीं धर्म उसको आकर्षक मालूम पड़ता है।

तो अब तक का सारा धर्म मरे हुए आदमियों को आकर्षित करता है, जिंदा आदमी को नहीं आकर्षित करता है। ताकत जिंदा आदमी के हाथ में है।

तो इन केंद्रों को तो मैं बिलकुल न्यूक्लिअस बनाना चाहता हूं। ऐसे न्यूक्लिअस, ऐसे केंद्र जहां से हम जीवन की सब विधाओं, सब डायमेंशन को स्पर्श करने लगें, तो ही हम दस-पचास वर्षों में एक नये समाज के जन्म के लिए कुछ आधार रख सकते हैं, और यह काम, सब तरह के लोग, इधर दस वर्षों से निरंतर बोलता हूं, सब तरह के लोग, मेरी नजर में हैं, कौन लोग क्या-क्या कर सकते हैं—लेकिन छोड़िये इन्हें।

इधर मैं जंगल में ठहरा हुआ था और एक मूर्तिकार, जो कभी बहुत प्रसिद्ध हुआ, लेकिन दुनिया से

परेशान होकर वह जंगल में जाकर रहने लगा—अब इस समय दुनिया में वह दस-पांच अच्छे मूर्तिकारों में है एक, लेकिन उसके पास मूर्ति बनाने के लिए पैसा नहीं है। फिर भी जो कुछ उसको कहीं से कोई दे देता है, कुछ कर देता है, वह बनाकर खड़ी करता जाता है। अब उसके पास इतनी सामर्थ्य है, पर सीमेंट नहीं है, कांक्रीट नहीं है, जिससे वह मूर्ति बना ले। उसने मुझे कहा, 'मैं जिस तालाब के पास हूं, उसके चारों तरफ ऐसी मूर्तियां बना देना चाहता हूं. . .।

उसने मुझे अपने नक्शे बताये, यह इतना अदभुत है, लेकिन उसके पास पैसे नहीं हैं। मैंने उससे कहा कि 'मैं कोई केंद्र खड़ा करूं और तुम वहां आ जाओ, और केंद्र के चारों तरफ ऐसी मूर्तियां फैला दो।' उसने कहा कि 'सारी जिंदगी वहां बिता दूंगा, क्योंकि मुझे और कोई काम ही नहीं है। मुझे रोटी मिल गयी, मैं सारी जिंदगी वहां बिता दूंगा।'

मूर्तिकार हैं, संगीतज्ञ हैं, लेकिन वही संगीत बाजार में बिकेगा, जो रद्दी होगा, क्योंकि रद्दी आदमी ही सिर्फ खरीदने वाला है। वे संगीतज्ञ रद्दी से रद्दी बेचने लायेंगे, क्योंकि बाजार में वेल्यूज उसका ही है। वही उसका मूल्य है। एक हमारे पास ऐसी व्यवस्था चाहिए मुल्क के प्रत्येक बड़े नगर में, जहां हम श्रेष्ठतम को खिलने के लिए मौका खोज सकें और वहां हम श्रेष्ठतम को चाहे छोटी मात्रा में ही सही जन्म दे सकें।

और ध्यान जो है, बहुत-सी चीजों का इकट्ठा जोड़ है। वह ऐसी चीज नहीं है कि आदमी चौबीस घंटे कुछ भी रहे और बस एक दफा ध्यान में चला जाये।

अब मेरी समझ है कि अगर किसी आदमी को ध्यान में जाना है, उसके घर की दीवालों के रंग की बदलाहट होनी चाहिए। क्योंकि दीवालों का रंग ऐसा हो सकता है, जो कभी ध्यान में जाने ही न दे। अगर आपने लाल, पीले और काले रंग दीवालों में पोत डाले हैं, तो उनके भीतर बैठकर आप पांच मिनट में आंख बंद किये हुए भी बेचैन हो जायेंगे।

कैसे कपड़े पहने हुए हैं, वह अर्थपूर्ण है, क्योंकि हम जीते बहुत शरीर के तल पर हैं। आत्मा वगैरह की तो बात होती है, जीते हम शरीर के ही तल पर हैं।

ये जो केंद्र होंगे, ये जीवन की सब दिशाओं में खोज करें, अन्वेषण करें। कपड़े कैसे हों, मकान की दीवालों का रंग कैसा हो, मकान के पास दरख्त कैसे हों—सारी चीजों के संबंध में स्पर्श करने की जरूरत है। और जब हम सब पर स्पर्श कर लें, तो मैं मानता हूं कि ध्यान इतनी सरल चीज है, जितनी कोई और चीज सरल नहीं है। शायद उसे अलग से करने की जरूरत न रह जाये।

भोजन कैसा हो, कपड़े कैसे हों, बगीचा कैसा हो, उठते लोग कैसे हों, बैठते लोग कैसे हों, बात कैसे करते हों—अगर इन सारी बातों के संबंध में एक बात स्मरण रख ली जाये कि कौन-सी चीजें शांति की तरफ ले जाने वाली होंगी, तो जरूरी नहीं है कि उस आदमी को और अलग से ध्यान करने के लिए जाना पड़े। ये सब ही उसके भीतर ध्यान का सूत्र बन जायेंगे।

तो मेरे लिए ध्यान का अर्थ ही बहुत और है। और अभी तो मैं जिनको ध्यान की बात कर रहा हूं, वे बिलकुल ही गलत लोग हैं, क्योंकि वे जिस दुनिया में रहते हैं, उससे ध्यान का कोई संबंध नहीं है। लेकिन उनको सुझाव देने का सवाल है, वह भी तो नहीं है, उनके पास। वे कर भी क्या सकते हैं।

एक पूरा दर्शन तो है मेरे दिमाग में। उसको अगर—जिनको भी ठीक लगता है, वे थोड़ी ताकत लगायें, तो वह पूरा हो जाये। अंत में मुझे कोई परेशानी नहीं होगी। जितना मैं कर सकता हूं, मैं करता चला जाता हूं, उससे कोई अंतर नहीं है। अब मेरे पास कुछ लोग हैं, जिनको मैं कहीं बिठा सकता हूं, जो कि बड़े काम के हो सकते हैं। मैं तो कहीं बैठ नहीं सकता। मेरा कहीं बैठना तो महंगी बात है। मैं चलता ही रहूंगा, पर कुछ लोगों को कहीं बिठाया जा सकता है, जो कि बड़े काम के सिद्ध हो जायेंगे। पर उनको बिठाने के लिए कोई उपाय और व्यवस्था चाहिए। तो वह आपको सोचना चाहिए।

इसे बंबई में एक मॉडल की तरह खड़ा कर लें। फिर हम देश के और नगरों में उसकी चिंता लें।

जो भी महत्वपूर्ण है, वह बहुत धीरे-धीरे प्रभावी होता है, वक्त लेता है। मौसमी फूल हम बोते हैं, तो वे महीने भर बाद फूल भी देने लगते हैं, और दो महीने बाद समाप्त भी हो जाते हैं। तो यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है कि आज हो जायेगी। और इसलिए मुझे लगता है कि अक्सर इसीलिए काम नहीं हो पाता। क्योंकि हमारी आकांक्षाएं बहुत मौसमी होती हैं। हम चाहते हैं कि अभी हो जाये! वे अभी नहीं हो पाती हैं तो फिर हम थककर लौट जाते हैं कि अभी नहीं हो सकती।

पर यह तो लंबी यात्रा है, और ऐसी यात्रा है, जो अंत कहीं भी नहीं होती है। हम फिर उसे धक्का दे जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं। फिर कोई और उसे धक्का दे जाता है और समाप्त हो जाता है—और यात्रा चलती रहती है। यात्रा अनंत है।

पर एक ही ध्यान अगर आदमी को जिंदगी में रह जाये कि उसने मनुष्य के आनंद की तरफ और मनुष्य के मंगल की तरफ कुछ भी धक्का दे दिया था, तो भी मैं मानता हूं कि वह बड़ी शांति अनुभव करेगा। खुद देखना है मनुष्य को। लेकिन अगर हमने यह नहीं किया तो ध्यान रहे, वह नहीं हो सकता कि आप खाली रह जायें। धक्के तो आप दे ही रहे हैं, तो आप अशांति की तरफ देंगे, अमंगल की तरफ देंगे।

आप जी रहे हैं, तो आपके धक्के जीवन को लगेंगे ही। अब सवाल इतना ही है कि वे धक्के किस तरफ से ले जाते हैं और कहां ले जाते हैं। आदमी को मंगल की तरफ ले जाते हैं, शुभ की तरफ, आनंद की तरफ—इससे बड़ी कृतार्थता नहीं हो सकती कि एक आदमी अपने जीवन में कुछ भी, सबके मंगल के लिए कुछ कर पाये।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जब तुम ध्यान करो, तो कभी ऐसा मत सोचना कि ध्यान से जो शांति मिले, वह मुझे मिल जाये। नहीं तो तुम कभी शांत ही न हो सकोगे, क्योंकि वह 'मुझे' का भाव भी अशांति है। बुद्ध कहते थे कि जब तुम्हें ध्यान से शांति मिले, तो तुम यह भी प्रार्थना करना कि सबको बंट जाये। यह मत सोच लेना के मुझे मिल जाये, क्योंकि मुझे मिलने का जो खयाल है, वह भी अशांति का बुनियादी आधार है। वह बंट जाये, वह सबको मिल जाये।

तो बुद्ध कहते, ध्यान करते वक्त, बैठते वक्त कहना, जो शांति आये वह सबमें बंट जाये और वह सबमें दूर-दूर तक फैल जाये। उसमें मेरे 'मैं' को रखना नहीं बीच में। और जब ध्यान से उठो और शांति अनुभव हो, तो यही प्रार्थना करते उठना कि सबका मंगल हो, सब तक फैल जाये।

और बड़े मजे की बात है, जो अपने तक रोकना चाहता है, वह सब तक तो फैला नहीं पाता, अपने तक

भी पहुंचा नहीं पाता। और जो सब तक फैलाना चाहता है, वह सब तक तो फैला देता है और अचानक पाता है कि सब तक फैलाने में उस तक तो बहुत फैल गयी है। उस तक तो फैल ही गयी है। वह तो सवाल ही नहीं है, वह तो आ ही गयी है।

प्रश्नः यह अच्छा है या बुरा है, यह सब क्या है, क्यों है, किसलिए है, इसको जानने का उपाय क्या है?

असल में हमारे ऐसे जो सवाल होते हैं, सवाल ये नहीं हैं। इन सवालों में कुछ बातें हम मानकर चल पड़ते हैं। एक बात तो यह मान लेते हैं कि हर चीज का अर्थ होना चाहिए। यह हम मानकर चल पड़ते है कि जो भी चीज है, उसका अर्थ होना चाहिए। एक फूल खिला है, तो हम पूछते हैं, किसलिए खिले हैं? एक सूरज जल रहा है और रोशनी दे रहा है, हम पूछते हैं—किसलिए? लेकिन न सूरज जवाब देगा, न रोशनी जवाब देगी। फूल खिलने में लगा रहेगा, सूरज बिखरने में लगा रहेगा। और हम सवाल पूछने में खराब होते रहेंगे। यानी आदमी जो सवाल उठाता है, वे सवाल ऐसे नासमझी के हैं! उसमें नासमझी की कुछ बुनियादी पकड़ है।

हमें पहले से ही मालूम है कि हर चीज में कोई मतलब होना चाहिए। लेकिन आपको खयाल में ही नहीं कि अगर हर चीज में मतलब हो, तो जिंदगी ऐसी बदतर हो कि जिसका कोई हिसाब नहीं। जिंदगी में जो भी थोड़ा-सा सुंदर है, वह गैर-मतलब का है— परपजलैस—जो भी थोड़ा-सा सुंदर है। मैं किसी को प्रेम करता हूं और अगर मैं पूछने लगूं कि मतलब क्या है प्रेम करने का! तो बात गयी।

हम जब पूछते हैं, तो हम सब चीजों को मतलब की भाषा में पकड़ना चाहते हैं और जब मतलब की भाषा में हम सब चीजों को पकड़ेंगे, तो जिंदगी एकदम उदास और बेकार हो जायेगी। जिंदगी का जितना आनंद है, वह उन्हीं सब चीजों में है, जो गैर-मतलब हैं। अब एक आदमी नाच रहा है। क्या मतलब है? वह कहता है, 'नाचना ही मतलब है।' एक आदमी गीत गा रहा है। क्या मतलब है? वह कहता है, 'गीत गाना ही मतलब है।' पक्षी सुबह गीत गा रहे हैं और आकाश में उड़ रहे हैं। क्या मतलब है? उड़ना आनंद है, मतलब कुछ भी नहीं है।

लेकिन मतलब होना ही क्यों चाहिए! क्या जरूरत है कि हर चीज में मतलब हो! मेरी समझ तो उलटी है। मेरी तो समझ यह है कि जितनी समझ बढ़ती है, जिन चीजों में हम मतलब समझते हैं, वह भी गैर-मतलब हो जाती है। और आखिर में यह सारा जगत जस्ट ए प्ले, लीला जैसा—मतलब नहीं रह जाता, एक खेल रह जाता है।

लेकिन हमारे दिमाग खेल को स्वीकार नहीं करते, काम को स्वीकार करते हैं। और काम और खेल में फर्क है। काम में मतलब होता है, खेल में मतलब नहीं होता है। और मजा यह है कि काम से हम परेशान हैं, और काम को हम स्वीकार करते हैं। और खेल भी खेल रहा हो, तो उसको भी काम बनाना चाहते हैं। अगर चार बच्चे खेल रहे हैं, तो बड़े-बड़े उनसे यह पूछना चाहते हैं कि क्या मतलब है? किसलिए खेल रहे हो? क्योंकि बड़े-बड़े खेलेंगे भी अगर, तो तभी खेलेंगे, जब दांव पर कुछ पैसा लगा लें, तो कुछ मतलब रहेगा

उसका। कि पचास जीते कि पचास हारे। क्योंकि बेकार क्यों सिर फोड़ रहे हैं हम! कोई फायदा नहीं।

लेकिन बच्चे खेल रहे हैं। उनकी समझ के बाहर है कि मतलब क्यों पूछ रहे हैं! खेलना अपने में काफी है, पर्याप्त है। उसके आगे पूछने की बात कहां उठती है! उसके आगे पूछने की बात इसलिए उठती है कि आपको खेल भूल गया है। आपको खेल का पता ही नहीं है। बस आपको सब काम रह गया है।

दुकान है तो मतलब है। मंदिर है तो मतलब है! हम पूछते हैं कि किसलिए भगवान के मंदिर जायें, और क्या मिल जायेगा हमें वहां? असल में वे मंदिर में भी तभी जायेंगे, जब मंदिर भी दुकान सिद्ध हो जाये। जब कुछ मिले, तब वे जा सकते हैं। और अगर यह आदमी इस तरह पूछता रहे, पूछता रहे, तो क्या अंतिम परिणाम हो सकता है। फिर वह यही पूछेगा कि मेरे होने का क्या मतलब है? तब फिर आत्महत्या के सिवाय उपाय नहीं रह जाता। यह जो सवाल है न आपका इसका अंतिम उत्तर आत्मघात है।

बंबई; दिनांक 25 फरवरी ,1970.

चौथा प्रवचन

ध्यान है: साक्षी-भाव

प्रश्न: ध्यान के समय मन एकाग्र नहीं होता, तो क्या करूं?

नहीं; पहली तो यह बात आपके खयाल में नहीं आयी कि एकाग्रता ध्यान नहीं है। मैंने कभी एकाग्रता करने को नहीं कहा। ध्यान बहुत अलग बात है। साधारणतः तो यही समझा जाता है कि एकाग्रता ध्यान है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। क्योंकि एकाग्रता में तनाव है। एकाग्रता का मतलब यह है कि सब जगह से छोड़कर एक जगह मन को जबरदस्ती रोकना। एकाग्रता सदा जबरदस्ती है; इसमें कोएर्सन है। क्योंकि मन तो भागता है, और आप कहते हैं: 'नहीं भागने देंगे' तो आप और मन के बीच एक लड़ाई शुरू हो जाती है। और जहां लड़ाई है, वहां ध्यान कभी नहीं होगा। क्योंकि लड़ाई ही तो उपद्रव है, हमारे पूरे व्यक्तित्व की। कि वह पूरे वक्त कॉनफ्लिक्ट है, द्वंद्व है, संघर्ष है। और मन को ऐसी अवस्था में छोड़ना है, जहां कोई कॉनफ्लिक्ट ही नहीं है, तब ध्यान में आप जा सकते हैं।

मन को छोड़ना है निद्व[illegible]द्व। अगर द्वंद्व किया, तो कभी ध्यान में नहीं जा सकते। और अगर द्वंद्व किया, तो परेशानी बढ़ जाने वाली है। क्योंकि हारेंगे, दुखी होंगे। जोर से दमन करेंगे; हारेंगे, दुखी होंगे और चित्त विक्षिप्त होता चला जायेगा। बजाय इसके कि चित्त आनंदित हो, प्रफुल्लित हो—और उदास, और हारा हुआ, फ्रस्ट्रेटेड हो जायेगा।

तो मन से तो लड़ना ही नहीं है, यह तो मेरा पहला सूत्र है। जो मन से लड़ेगा, उसकी हार निश्चित है। अगर जीतना है मन को, तो पहला नियम यह है कि लड़ना मत। इसलिए मैं एकाग्रता के लिए, कनसनट्रेशन के लिए सलाह नहीं देता हूं। मेरी सलाह तो है रिलैक्जेशन के लिए—कनसनट्रेशन के लिए नहीं। मेरी सलाह एकाग्रता के लिए नहीं है, मेरी सलाह विश्राम के लिए है। एक घण्टे भर के लिए मन को विश्राम देना है, तो

विश्राम का सूत्र अलग हो जायेगा।

विश्राम का पहला तो सूत्र यह है कि मन जैसा है, हम उससे राजी हैं। अगर आप नाराज हैं उससे, तो फिर विश्राम संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि नाराजगी से लड़ाई शुरू हो जायेगी। मन जैसा भी है—बुरा और भला, क्रोध से भरा, चिंता से भरा, विचारों से भरा—जैसा भी है, हम उसी मन के साथ राजी हैं।

तो एक घंटे के लिए समय निकाल लें और मन जैसा है, वैसा उसके साथ पूरी तरह राजी हो जायें। टोटल एक्सेप्टिबिलिटी। विरोधी नहीं है हमारा मन। अगर मन भागता है, तो हम भागने देते हैं। अगर रोता है, तो रोने देते हैं, अगर हंसता है, तो हंसने देते हैं। अगर वह व्यर्थ की बातें सोचता है, तो सोचने देते हैं। हम कहते हैं कि मन जो भी करे, एक घण्टा लड़ाई नहीं करेंगे। पहली बात। हम लड़ेंगे ही नहीं। मन जो भी करेगा, हम चुपचाप बैठे देखते रहेंगे, इससे न लड़ेंगे।

एक तो स्थूल लड़ाई है, जो आप लड़ते हैं कि मन कह रहा है, 'यहां जाना है' और आप कहते हैं, 'वहां नहीं जायेंगे'। जैसा कि साधारणतः धार्मिक आदमी करता रहता है। इसलिए धार्मिक आदमी साधारणतः दुखी आदमी होगा। धार्मिक आदमी पूरे वक्त यही करता रहता है। मन कहता है, 'खाना खाओ।' वह कहता है, 'नहीं खायेंगे।' मन कहता है, 'यह कपड़ा बहुत सुंदर है।' वह कहता है, 'हम कपड़े छोड़ देंगे।' वह मन से लड़कर ही चलता है। तो मन से लड़कर वह दुखी होगा, परेशान होगा, लेकिन शांत नहीं हो पायेगा।

तो एक घंटे के लिए मन से कोई लड़ाई नहीं लेनी है। मन जो करता है, हम कहते हैं—करो। लेकिन यह तो बहुत स्थूल हुई बात। हमारे मन में बड़ी सूक्ष्म लड़ाई है, जिसका हमें पता नहीं है। कंडेमनेशन है हमारे मन में। जैसे हम यह भी कह देंगे कि अच्छा, जो करना है करो, लेकिन इसमें भी कंडेमनेशन हो सकता है। इसमें भी यह हो सकता है कि 'कोई बात नहीं है, हम नहीं लड़ते। पर यह बात तो ठीक नहीं है।' कि मन सोच रहा है कि एक वेश्या के घर चले जाओ। हम कहते हैं कि बात तो ठीक नहीं है, लेकिन चूंकि एक घंटा हमको नहीं लड़ना है, इसलिए हम नहीं लड़ते। लेकिन यह बात ठीक नहीं है!

अगर इतना भी रुख है भीतर कि 'यह बात ठीक नहीं है', तो लड़ाई जारी है। तब विश्राम उपलब्ध नहीं होगा। तो स्थूल रूप से लड़ना नहीं है। सूक्ष्म रूप से निंदा और प्रशंसा नहीं करनी है कि यह ठीक है, यह गलत है। यह मन करेगा, तो यह भीतरी अप्रूवल है हमारी कि हां, यह बहुत बढ़िया हो रहा है। कृष्ण भगवान की मूर्ति बना रहा है, यह बहुत ही बढ़िया हो रहा है। और एक नग्न स्त्री की मूर्ति बना रहा है, तो बहुत बुरा हो रहा है। यह सूक्ष्म निंदा और प्रशंसा भी नहीं होनी चाहिए ध्यान में। इसका मतलब यह हुआ कि लड़ना मत, और किसी तरह का रुख मत लेना, एटिटयूड मत लेना कि यह अच्छा है कि बुरा है। निर्णय मत लेना कि क्या है। जो है—है।

हम इस वृक्ष के पास खड़े हैं। उसमें कांटे लगे हैं, तो लगे हैं और फूल लगा है तो लगा है । हम न तो यह कहते हैं कि फूल अच्छा है; न यह कहते हैं कि कांटे बुरे हैं। हम इतना ही कहते हैं कि हमें पता चल रहा है कि कांटे लगे हैं और फूल लगे हैं। हम फूल और कांटे के बीच न कोई तुलना करते हैं, न एक दूसरे को ऊंचा नीचा बिठाते हैं। न हम यह चाहते हैं कि फूल ही फूल हो जायें और कांटे बिलकुल न रह जायें। अगर इसे ठीक से समझेंगे तो एक स्थूल लड़ाई हुई और एक सूक्ष्म लड़ाई हुई, और एक अति सूक्ष्म लड़ाई है।

अति सूक्ष्म का मतलब यह है कि अगर हमारे मन में कोई चाह भी है कि ऐसा होना चाहिये, तो बहुत गहरे में लड़ाई चलती रहेगी। हम नहीं कहते कि कांटा बुरा है, लेकिन बहुत गहरे में मन यह है कि कांटा न होता और फूल होता, तो अच्छा होता। अगर इतना भी भीतर के किसी तल पर भाव है, तो लड़ाई जारी रहेगी। आप लड़ रहे हैं। आप कांटे को स्वीकार नहीं कर पाये हैं। तो मेरे लिए ध्यान का मतलब है—संपूर्ण स्वीकृति। स्थूल लड़ाई नहीं, सूक्ष्म लड़ाई नहीं, भावों की अति सूक्ष्म लड़ाई भी नहीं। घड़ी दो घड़ी के लिए चौबीस घंटे में इस तरह छोड़ने लगें अपने को। इस छोड़ने से...जैसे-जैसे छोड़ना सरल होगा...। एकदम से छोड़ना बहुत कठिन होता है। क्योंकि हम इतने लड़ रहे हैं कि हम भूल ही गये हैं कि बिना लड़े कैसे रहें।

अगर एक पति-पत्नी को हम कहें कि चौबीस घंटे बिना लड़े इस तरह घर में रह जाओ, तो रह सकते हैं बिना लड़े। लेकिन हम उनसे कहें कि लड़ने का भाव ही मत उठने दो—निंदा, प्रशंसा भी मत करो। तो कठिनाई शुरू हो जायेगी। और उनसे अगर हम यह कहें कि यह सोचो ही मत कि पत्नी कैसी है, पति कैसा है; जैसा है, है। तब और कठिन हो जाता है।

न लड़ना बहुत आसान है। चौबीस घंटे का कश्त कर लिया कि नहीं लड़ेंगे, तो एक दूसरे से बचकर जा रहे हैं, लेकिन लड़ाई जारी है। क्योंकि उसके बचकर जाने में भी लड़ाई चल रही है। नहीं बोल रहे हैं कि कहीं लड़ाई न हो जाये; तो न बोलना लड़ाई हो गयी। ऐसी बातें नहीं उठा रहे हैं कि जिनमें लड़ाई हो जाये। लड़ाई जारी है।

लेकिन सूक्ष्म तल पर अगर हम कोई भाव, अगर कोई रुख ले रहे हैं—देख रहा हूं मैं कि यह जो पत्नी है, टेबल वहीं रखे दे रही है, जहां कि कहा, हजार दफे कहा कि मत रखना। चूंकि लड़ना नहीं है, नहीं लड़ रहे हैं, और ठीक है, स्वीकार भी कर रहे हैं कि टेबल अब जहां रख रही है, रखने दो। कोई बात नहीं क्योंकि चौबीस घंटे लड़ना नहीं है। लेकिन मन में यह भाव आ रहा है कि वही गलती फिर की जा रही है, जो सदा मना की गयी है। तो वह लड़ाई जारी है। अब भी वह प्रतीति हो रही है कि लड़ाई जारी है।

तुम लाने की कोशिश ही मत करना किसी फीलिंग को। तुम लाये, तो लड़ाई शुरू हो गयी और लाना ही नहीं है तुम्हें कुछ। जो हो रहा है, वह है। तुम्हारी तरफ से कुछ भी मत करना। जो होता है, उसे होने देना।

यही तकलीफ है कि हम सोचते हैंः हम क्या करें फिर। नहीं; आपने किया कुछ कि लड़ाई शुरू हुई, क्योंकि करने का मतलब ही यह होता है कि कुछ था, जो नहीं होना था, वह हो रहा है। कुछ था, जो होना था और नहीं हो रहा है। हम उसको बदल रहे हैं। तो लड़ाई शुरू हो गयी।

न, मैं यह कह रहा हूं कि तुम कुछ करना ही मत। जो हो, होने देना; लेट-गो की हालत रखना आप। अपनी तरफ से डूइंग की हालत नहीं है, लेट-गो की हालत है। जैसे समझ लो कि मैं मर जाऊं इस कमरे में। फिर यह कमरा कैसे चलेगा। लोग यहां से गुजरेंगे। टेबल कहीं रखी रहेगी। फोन की घंटी बजेगी। सब होगा। लेकिन मैं क्या करूंगा!

मैं नसरुद्दीन की एक कहानी कहता रहता हूं। उसने अपनी पत्नी से एक बार पूछा कि 'कई लोग मरते जा रहे हैं। मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि लोग मर कैसे जाते हैं? और अगर कभी मैं मर जाऊं, तो मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं मर गया हूं! तुझे अगर कुछ पता हो, तो मुझे बता दे। समझूंगा कैसे कि मैं मर गया हूं?'

उसकी पत्नी ने कहा, 'इसमें कुछ समझने की बात है! हाथ-पैर ठंडे हो जायेंगे।'

नसरुद्दीन गया था जंगल में लकड़ी काटने। सर्द थी सुबह, बर्फ पड़ रही थी। उसके हाथ-पैर ठंडे हो गये। तो उसने सोचा कि 'लगता है कि अब मैं मर रहा हूं। क्योंकि हाथ-पैर ठंडे हो रहे हैं और लक्षण हमें एक ही बताया गया था कि हाथ-पैर ठंडे हो जायेंगे।' जब वे होते ही चले गये ठंडे और उसकी कुल्हाड़ी भी छूटने लगी हाथ से, तो उसने सोचा, 'अब तो पक्का ही है।' तो उसने मरते हुए लोगों को देखा था कि मरा हुआ आदमी खड़ा नहीं रहता है, लेटा रहता है। वह लेट गया। जब वह लेट गया, तब और सब ठंडा होने लगा, क्योंकि काम कर रहा था, तो थोड़ा गर्म था; वह और सब ठंडा हो गया। उसने सोचा, 'अब ठीक है। अब तो आखिरी वक्त आ गया। अब मर गया।' जब पूरा ठंडा हो गया तो समझा कि मर गया। तो स्वभावतः मरा हुआ आदमी किसी को चिल्लाता नहीं, किसी से बोलता नहीं, किसी को देख नहीं सकता, तो उसने आंख बंद कर लीं; चिल्लाना बंद कर दिया। उसने कहा, 'अब कोई सहारा नहीं, जब मर ही गये और लक्षण पूरा हो गया!'

चार आदमी निकले थे रास्ते से, उन्होंने देखा कि कोई आदमी मर गया। तो उन्होंने अर्थी बनायी उसकी। उसने सोचा कि 'मुर्दे की तो अर्थी बनती ही है, तो बन रही है। कई बार अर्थी ठीक नहीं बन रही थी, क्योंकि उन चारों का कोई इंतजाम नहीं था, तो कई बार उसे लगा कि सुझाव दे दूं कि जरा ऐसा बांधो डंडा, लेकिन उसने कहा मुर्दे को यह बात ही नहीं करनी चाहिए। वह जो आदमी मर ही गया वह कैसे बतायेगा! इसलिए उसने जैसी भी बनी अर्थी, बनने दी। वह अर्थी पर सवार भी हो गया अर्थी चल पड़ी। लेकिन वे चारों परदेशी थे। चौरस्ते पर पहुंचे, तो उनको सवाल उठा कि मरघट कहां है इस गांव का? नसरुद्दीन को मालूम था, लेकिन उसने सोचा कि मुर्दे को बात नहीं करनी चाहिए! उन चारों ने सोचा कि बड़ी सर्दी है, बर्फ पड़ रही है, मरघट कहां है? अब कोई निकले राहगीर तो पूछ लें। बड़ी देर हो गयी, कोई राहगीर न निकला।

नसरुद्दीन से रहा न गया। बड़ी देर तक उसने अपने को सम्हाला। कोई राहगीर भी नहीं निकल रहा है यहां से। इमरजेन्सी के क्षण में मुर्दा भी बोले, तो कोई हर्जा भी नहीं है। उसने कहा कि 'जब मैं जिंदा हुआ करता था, तब लोग बायें तरफ जाते थे मरघट को! जब मैं जिंदा हुआ करता था!' फिर वह इतना कहकर अपनी जगह पर लेटा रहा। तो उन्होंने कहा, 'अरे मुर्दे, तू बोल ही रहा है, तो हमें क्यों परेशानी में डाले हुए है!'

यह जो एक घंटे भर नसरुद्दीन ने किया,यह ध्यान में होगा। होना चाहिए। यानी आपको कुछ करना ही नहीं है। इमरजेन्सी भी आ जाये, तो भी नहीं बताना है कि यह हो रहा है। आपको सब कुछ छोड़ ही देना है। जो हो रहा है, हो रहा है। जब आप सब छोड़ देंगे और जो होना है, वह तो होता रहेगा ही, बंद तो नहीं हो जाने वाला है। विचार चलते रहेंगे। आवाज कानों में पड़ती रहेगी, हृदय धड़कता रहेगा, श्वास चलती रहेगी। पैर में कीड़ा काटेगा, तो पता चलेगा। पैर जाम हो जायेगा, तो पता चलेगा। करवट बदलने का मन हो, तो करवट लेने देना। हाथ कीड़ों को हटाना चाहे, तो हटाने देना। न अपनी तरफ से हटाना, न अपनी तरफ से रोकना। मेरा मतलब समझ रहे हो न! अपनी तरफ से कुछ मत करना। अगर हाथ हटाना चाहें तो हटा देने देना। न हटाना चाहें, तो पड़े रहने देना। तो सारी स्थिति को पूरी तरह स्वीकार कर लेना। सब होता रहेगा।

जब सब होता रहे और हम सब स्वीकार कर लें, तो एक बहुत नयी चेतना का जन्म शुरू होता है। तत्काल तुम साक्षी हो जाते हो, तत्काल। क्योंकि जैसे ही तुम कर्त्ता नहीं रहते, तुम साक्षी हो जाते हो। कोई

उपाय ही नहीं है दूसरा। यह ट्रांसफार्मेशन आटोमैटिक है। लोग सोचते हैं कि साक्षी होना पड़ेगा। साक्षी कोई हो ही नहीं सकता। वह तो जब कर्त्ता नहीं रह जाता, तो होगा क्या! जैसे कि नसरुद्दीन की अर्थी बांधी जा रही है। क्या करेगा बेचारा, देख रहा है। साक्षी है भर, अब तर्क करने की बात ही खत्म हो गयी। वह आदमी मर गया है।

जिस क्षण तुम्हारा कर्त्ता का भाव चला जाता है, उसी क्षण तुम्हारा साक्षी का भाव आविर्भूत हो जाता है। यह सहज होता है। इसलिए साक्षी होना कोई कर्म नहीं, कृत्य नहीं। और साक्षी हो जाना ध्यान है। साक्षी हो जाना ध्यान है—इससे ज्यादा ध्यान कुछ भी नहीं है।

इसलिए एकाग्रता तो कभी ध्यान नहीं है, क्योंकि तुम कर्त्ता हो, तुम कर रहे हो। तुम्हारा किया हुआ, तुमसे बड़ा नहीं होने वाला है। तुम परेशान हो, दुखी हो। तुम्हारा किया हुआ भी परेशानी होगी, दुख होगा। अगर मैं स्टुपिड आदमी हूं, मूढ़ आदमी हूं, तो मेरी एकाग्रता भी मूढ़ता ही होगी। मैं ही एकाग्र करूंगा न! एकाग्रता कोई और तो नहीं करेगा। मैं एक मूढ़ आदमी हूं, मैं एकाग्रता करता हूं। तो एक मूरख एकाग्र हो जायेगा और क्या हो जाने वाला है! और एकाग्र मूरख और खतरनाक है। अगर तुम दुखी हो, तो दुखी होना ही एकाग्रता बन जायेगी। दुख पर ही तुम एकाग्र हो जाओगे और और मुश्किल है।

एकाग्रता कभी भी तुम्हें अपने से ऊपर नहीं ले जा सकती। ट्रान्सेंडेन्स उसमें नहीं है संभव, क्योंकि तुम्हीं करोगे, तो आगे कैसे जाओगे? लेकिन साक्षी भाव जो है, वह तुम्हारा कृत्य नहीं है। तुम हो ही नहीं उसमें। वह हैपनिंग है। तुम तो अचानक पाते हो कि जिस क्षण वह स्थिति आ जाती है कि तुम कर्त्ता नहीं रहे, तुम अचानक पाते हो कि तुम साक्षी हो गये हो। इस होने में कोई यात्रा नहीं करनी पड़ती। कर्त्ता होने से साक्षी होने तक तुम्हें जाना नहीं पड़ता। बस, अचानक एक क्षण पहले तुम कर्त्ता थे और अचानक एक क्षण बाद तुम पाते हो कि कर्त्ता खो गया है और मैं सिर्फ साक्षी रह गया हूं।

यह जो दशा है, यह ध्यान है। और इसलिए ध्यान करने की कोशिश मत करना। ध्यान हो सके, इस हालत में अपने को छोड़ना है। ध्यान होगा, आपको तो सिर्फ अपने को उस हालत में छोड़ देना है कि हो जाये। सूरज निकला है और मैंने अपना दरवाजा खुला छोड़ दिया है। सूरज निकलेगा, रोशनी भीतर आ जायेगी, वह मुझे लानी नहीं पड़ेगी। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि मैं सूरज की रोशनी बांधकर कमरे के भीतर तो नहीं ला सकता, लेकिन दरवाजा बंद करके सूरज की रोशनी को रोक सकता हूं। बाहर रोकने में कठिनाई है। दरवाजा बंद है, तो रुक जायेगी। तो तुम ध्यान को होने से रोक सकते हो, रोक रहे हो; लेकिन ध्यान को ला नहीं सकते। हमारी जो सारी तकलीफ है, वह बहुत उलटी है।

जो असलियत है, वह यह है कि जब कोई मुझसे पूछता है कि ध्यान नहीं हो रहा है, तो उलटी ही बात पूछ रहा है। वह असल में प्राणपण से चेष्टा कर रहा है कि कहीं ध्यान न हो जाये! पूरी जिंदगी लगा रहा है कि ध्यान न हो जाये। जन्म-जन्म उसने खराब किये हैं कि ध्यान न हो जाये! और ध्यान के लिए उसने हजार तरह के बैरियर खड़े किये हैं कि वह हो न जाये! कहीं मैं साक्षी न हो जाऊं, इसके लिए तुम सब इंतजाम किये हुए बैठे हो। और फिर जब सुनते हो किसी से कि साक्षी होने में बड़ा आनंद है, तब तुम सोचते हो, 'चलो, साक्षी भी हो जायें।' तो साक्षी होने की भी कोशिश करते हो और वह तुम्हारा साक्षी से रोकने का पूरा इंतजाम जारी है।

उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसी इंतजाम के भीतर तुम साक्षी भी होना चाहते हो। यह नहीं होगा।

तो घड़ी दो घड़ी के लिए अपने को पूरा छोड़ो। जो हो रहा है, उसे पूरा स्वीकार कर लो। फिर कुछ होगा। वह कुछ होना ध्यान है। और इसलिए जिनको ध्यान मिलेगा, जिनको हो जायेगा, वे यह नहीं कह सकेंगे कि मैंने किया। अगर कहते हों, तो समझ लेना, अभी नहीं हुआ। और इसीलिए तो बेचारा वैसा आदमी कहता है, 'प्रभु की कृपा है।' उसका कोई और मतलब नहीं है, कोई प्रभु कृपा वगैरह नहीं करता। मगर उसकी तकलीफ है। उसकी तकलीफ यह है कि उसके द्वारा तो हुआ नहीं, वह कहां कहे, किससे कहे। हो तो गया है। उसके द्वारा हुआ नहीं। किसने किया है? बताने जाइए, तो उसकी बड़ी मुश्किल है। तो वह कहता है कि प्रभु की कृपा से हुआ है, इसका कुल मतलब इतना है कि मेरे द्वारा नहीं हुआ है। प्रभु कृपा से नहीं हुआ है। प्रभु कृपा का मतलब तो यह हो जायेगा कि प्रभु किसी पर कम कृपालु है, किसी पर ज्यादा है, तो बड़ी गड़बड़ हो जायेगी। उसमें प्रभु पर बड़ा लांछन लगेगा।

प्रश्नः आप कहते हैं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं। फिर आप कहते हैं कि सब परमात्मा ही करवा रहा है। ये दोनों वक्तव्य तो विरोधी लगते हैं!

मामला ऐसा है, जिंदगी इतनी जटिल है और हमारे निर्णय सब सरल होते हैं, और इसलिए हम तालमेल नहीं बिठा पाते। तुम्हें लगता है, एक तरफ मैं यह कह रहा हूं कि मैं विद्रोह उठाना चाहता हूं और दूसरी तरफ मैं कह रहा हूं कि परमात्मा जो करवा रहा है, वह मैं कर रहा हूं। तो विरोध दिखता है—है नहीं। क्योंकि जब मैं यह कह रहा हूं कि मैं विद्रोह कर रहा हूं, यह भी परमात्मा ही कह रहा है मेरे हिसाब में। इसलिए विरोध नहीं है। और अगर तुम्हारे हिसाब में ऐसा लगता है कि यह आप ही कह रहे हो, तो दूसरा भी मैं ही कह रहा हूं। तब भी कोई फर्क नहीं है, तब भी विरोध नहीं होता है। क्योंकि मैं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह कर रहा हूं; अगर आप मानो कि यह आप ही कर रहे हो, और यह कि हम किसी परमात्मा को नहीं मानते—तो दूसरी बात जो मैं कह रहा हूं कि यह परमात्मा कर रहा है, यह भी मैं ही कर रहा हूं। तब भी कोई विरोध नहीं है। तुम्हारी तरफ से भी विरोध नहीं है। विरोध इसलिए होता है कि एक बात मेरी तरफ से ले लेते हो, एक तुम्हारी तरफ से ले लेते हो, तब विरोध होता है। अगर तुम भी अपनी दोनों ही बात करो, तो विरोध नहीं है।

मेरा मतलब यह है कि मैं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं। अगर तुम्हें यह लगता है कि यह आप ही कह रहे हो, और दूसरी तरफ आप कहते हो कि जो करवा रहा है, वह परमात्मा करवा रहा है, तो विरोध दिखता है इसमें। क्योंकि अगर परमात्मा करवा रहा है, तो फिर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं। मेरी तरफ से इसलिए विरोध नहीं है कि मैं कहता हूं यह भी परमात्मा ही करवा रहा है। मेरे लिए इसमें कोई फर्क नहीं है दोनों बातों में। एक ही बात है। यानी यह भी मैं अपनी तरफ से नहीं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं।

प्रश्नः जनरल जेंट्री की हालत तो भिन्न होगी?

जनरल जेंट्री की बात मत करो। वह है ही नहीं कहीं। तुम हो, मैं हूं। ये हैं, मैं हूं। जनरल जेंट्री कहीं भी नहीं है। वह है नहीं कहीं। मैं तो इधर पंद्रह साल से भटकता हूं, वह मुझे मिलती नहीं। सीधे आदमी हैं और सीधी बात करनी चाहिए। वह जनरल जेंट्री बहुत दिक्कत दे देती है। इसको बीच में लेकर बड़ा मुश्किल हो जाता है काम करना। तुम्हारी बात मुझे खयाल में आती है, मेरी बात तुम्हें। बात खत्म हो गयी। जनरल जेंट्री जब मुझे मिलेगी, उससे मैं बात कर लूंगा। अगर तुम्हारी समझ में आ गया है, तो जनरल को भी समझ में आ सकता है। मैं यह कह रहा हूं कि जैसे ही ध्यान का विस्फोट होगा—कल तक तुमने जहां अपने को कर्त्ता माना था, कल तक तुम्हारा सब काम कर्तृत्व का था—जैसे ही ध्यान का विस्फोट होगा, काम सब जारी रहेंगे, लेकिन कर्त्ता विदा हो जायेगा और अब तुम्हारी बड़ी तकलीफ होगी कि तुम क्या कहो, कि कैसे कर रहे हो। कल तक तुमने अपनी पत्नी को कहा था कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। अपने बेटे से कहा था कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। अगर ध्यान का विस्फोट हो गया, तो तुम कहोगे कि मैं नहीं जानता। यह प्रेम तेरी तरफ बहता है, मुझे पता नहीं है। एक रास्ता तो यह है कि प्रेम हो रहा है मुझे पता नहीं। 'मैं करता हूं' अब मैं नहीं कह सकता। मैंने कभी किया नहीं प्रेम, यह हुआ है। एक तो रास्ता यह है। यह सैक्युलर हुआ। इसमें परमात्मा को बीच में नहीं लिया गया। हम कहते हैं, प्रेम जो है, वह घटता है, कोई करता नहीं। यह सैक्युलर हुई बात। इसमें धर्म को बीच में लेने की जरूरत नहीं समझी गयी। यानी यह उसी बात को गैर-धार्मिक ढंग से कहने की व्यवस्था हुई।

लेकिन अगर इसमें और गहराई बढ़ जाये, और गहराई बढ़ जाये, तो तुम्हें यह लगेगा कि अगर मैं यह कहता हूं कि मैंने प्रेम नहीं किया है और प्रेम घट रहा है, तो इसके दो मतलब हो गये—या तो प्रेम सिर्फ एक्सीडेंट है, जिसके पीछे कुछ भी नहीं है, कोई सोर्स नहीं है। जो कि बहुत इल्लाजिकल और अनसाइंटिफिक है। क्योंकि अगर घट रही है कोई चीज, तो भी तो कोई ओरिजिनल सोर्स होना चाहिए। नहीं तो घट नहीं सकती, कहां से घटेगी।

तो धर्म की जो दृष्टि है, वह और गहरी है। वह घटना पर ही नहीं रुकती है, वह इस पर रुकती है, कि मैंने तो प्रेम नहीं किया है और प्रेम हो रहा है। और तुमको भी मैं प्रेम करते देखता हूं और मैं देखता हूं कि तुमने प्रेम नहीं किया है। प्रेम हो रहा है। तुमको भी प्रेम करते देखता हूं और देखता हूं कि प्रेम हो रहा है। तब इस समग्र का जो इकट्ठा नाम है धार्मिक, वह परमात्मा है। तब हम समग्र को कह देते हैं कि समग्र की तरफ से हो रहा है। इसमें व्यक्ति नहीं कर रहे हैं, वह जो समग्रीभूत चेतना है, सब जहां इकट्ठे हैं, वहीं से कुछ हो रहा है।

एक वृक्ष बड़ा हो रहा है। अगर हम इस वृक्ष से पूछ सकें और वृक्ष उत्तर दे सके, तो दो ही उत्तर हो सकते हैं। या तो वह यह कहे कि मैं बड़ा हो रहा हूं, जो कि जरा ज्यादा होगा कहना। क्योंकि फिर सूरज का क्या होगा? अगर सूरज न उगे, तो वृक्ष बड़ा न हो। हवाओं का क्या होगा, जमीन का क्या होगा? हवाएं न बहें, तो वृक्ष बड़ा न हो। जमीन का क्या होगा? अगर जमीन पानी न दे, तो वह वृक्ष बड़ा न होगा। लेकिन अगर वृक्ष को भी चेतना आ जाए तो, वह कहेगा कि मैं बड़ा हो रहा हूं। लेकिन अगर वृक्ष थोड़ा समझे, तो शायद वह कहे कि मैं बड़ा नहीं हो रहा हूं, बड़े होने की घटना घट रही है। लेकिन तब इसमें कोई सोर्स नहीं पकड़ पाये कि कहां से घट रही है।

अगर और उसकी समझ गहरी हो जाये, तो शायद वह यह कहे कि समस्त जगत मुझमें बड़ा हो रहा है। समस्त जगत—सूरज भी, पानी भी, जमीन भी, हवा भी, आग भी, सब मुझमें बड़े हो रहे हैं। अब सारे जगत की अगर एक-एक चीज को गिनाने जायें, तो बहुत असंभव होगा। सब बड़े हो रहे हैं। करोड़ों-करोड़ों मील दूर बैठा तारा भी उस वृक्ष के बड़े होने में हाथ बंटा रहा है। आकाश में उड़ती हुई बदली भी हाथ बंटा रही है। दस करोड़ मील दूर सूरज भी बैठा हाथ बंटा रहा है। एक बच्चा सुबह आकर उस वृक्ष को प्रेम करता है, पानी डाल जाता है, वह भी हाथ बंटा रहा है। एक बकरी उस वृक्ष की टहनी काट डालती है, उस टहनी से चार टहनियां निकल आती हैं, तो वह भी उसमें हाथ बंटा रही है। अगर हम इन सारी चीजों को गिनायें तो सैक्युलर ढंग से भी कहा जा सकता है, लेकिन इन सारी चीजों को गिनाना बिलकुल बेमानी है। इसलिए धार्मिक आदमी ने एक शब्द निकाल लिया है,—परमात्मा। परमात्मा का मतलब है, वह सब, जो गिनाया नहीं जा सकता है, वह हाथ बंटा रहा है।

तो जब मैं यह कह रहा हूं कि वही करवा रहा है, तो इसका मतलब यह है कि यह सब जो है, यह सबका होना ही होना है। हम इसमें व्यक्ति की हैसियत से नहीं कुछ कर पा रहे हैं।

लेकिन ध्यान की घटना न घटे, तो यह दिखायी भी नहीं पड़ेगा। तब तो दिखायी पड़ेगा कि मैं कर रहा हूं। और इसलिए ध्यान के पहले अशांति है। क्योंकि वह मैं कर रहा हूं, तो फिर जब वह न होगा, तो मुझसे नहीं हुआ। हारूंगा तो मैं हारा, और जीतूंगा तो मैं जीता, तो वह 'मैं' चिंताएं इकट्ठी कर लेगा। ईगो जो है, वह एंग्जाइटी का केंद्र है। सारी चिंता का केंद्र 'मैं' है। क्योंकि आज मैं कहूंगा, हां, मैं जीत गया और कल हार जाऊंगा, तो फिर मुझे कहना पड़ेगा कि मैं हार गया। तो अब जीतकर अकड़कर निकला था सड़क पर, तो फिर हारकर रोता हुआ निकलना पड़ेगा। तो वह सारी तकलीफ खड़ी होगी।

लेकिन, घटना के बाद, हैपनिंग के बाद, ध्यान के बाद वह इंपोर्टेण्ट हो गया। अब हो रहा है। अब हारे तो परमात्मा हारता है, जीते तो परमात्मा जीतता है। अपना कुछ लेना-देना न रहा। अपन ही न रहे। इसलिए ऐसे आदमी को सुखी और दुखी होने के दोनों उपाय न रहे। और जब सुखी और दुखी होने का कोई उपाय नहीं रह जाता है, तब जो शेष रह जाता है, वही आनंद है। सुखी-दुखी होने का जब कोई उपाय नहीं रह जाता, तब भी तो कुछ शेष तो रह ही जायेगा? मैं तो रहूंगा ही। सब रहेगा। लेकिन तब जो स्थिति होगी, वह आनंद की है, या शांति की है। इसलिए ध्यान जो है, वह अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसके बिना मुक्ति, आनंद और शांति का कभी कोई पता नहीं चलता है। क्योंकि उसके बिना अहंकार नहीं टूटता। और अहंकार टूट जाये, तो क्या कहिएगा? क्या कहिएगा कि कौन करवा रहा है? एक तो रास्ता यह है, 'हो रहा है, कोई भी नहीं करवा रहा है।' कहने में हर्जा नहीं है; मैं कोई इनकार नहीं करता। लेकिन जितनी गहरी दृष्टि बढ़ेगी वैसा दिखाई पड़ेगा कि कोई नहीं करवा रहा, ऐसा कहना बहुत अवैज्ञानिक है। समष्टि, दि कलेक्टिव भागीदार है।

तो परमात्मा जो है, आम तौर से हम उसे व्यक्तिवाची समझ लेते हैं, वह गलत है। वह व्यक्तिवाची नहीं है। असल में परमात्मा एक वचन में है ही नहीं—बाई इट्स वेरी नेचर प्लूरल—सिंगुलर नहीं है वह। इसलिए परमात्मा शब्द का बहुवचन नहीं बनाया जा सकता, परमात्माओं, ऐसा नहीं बनाया जा सकता, इसका कोई मतलब ही नहीं है। परमात्मा, एक वचन में ही बोलना पड़े; क्योंकि वह एक वचन है ही नहीं, वह

कलेक्टिव की खबर है, समष्टि की। वह सब जो है, उसकी खबर है। अब सब में सब आ गया, इसलिए अब और आगे बचने को नहीं रहा कि हम कहें परमात्माओं, गाड्स। ऐसा उपयोग गलत है।

इसलिए अंग्रेजी जैसी भाषाओं के पास 'परमात्माओं' के लिए ठीक शब्द नहीं है। उनका जो गॉड है, वह गाड्स भी हो सकता है। इसलिए वह देवता का पर्यायवाची है, परमात्मा का पर्यायवाची नहीं है। देवता बहुवचन में हो सकते हैं—परमात्मा नहीं। वह शब्द जो है, वह समष्टि का, सबका, दि होल...। अंग्रेजी का 'होली' शब्द ज्यादा करीब है परमात्मा के। क्योंकि वह 'होल' से बनता है। होल से ही होली बनता है। होली शब्द ज्यादा ठीक है, वह परमात्मा का अर्थ रखता है। लेकिन उसका मतलब हमने पवित्रता और दूसरी बातें ले लिया है, वह ठीक नहीं है। दि होली। वह निकट से पकड़ता है बात को कि वह जो समस्त, इकट्ठा जहां सब हो गया है, उस इकट्ठे को हम कोई नाम देना चाहें तो कोई नाम दिया जो सकता है। वह नाम परमात्मा है।

यानी जब मैं यह कह रहा हूं कि मैं नहीं कर रहा, तब यह कह रहा हूं कि सब कर रहे हैं। उस करने में मैं सिर्फ एक हिस्सा हूं। इससे ज्यादा नहीं। और यह खयाल में आ जाये, तो सारी चिंता गई, क्योंकि तब न हार है न जीत है, तब न जन्म है, तब न मरण है; क्योंकि कौन मरेगा, कौन जीएगा! सब तो सदा है। वह जो व्यक्ति मरता और जीता है, वह तो गया। वह ध्यान में डूब गया। तो ध्यान को करने की कोशिश मत करना, इसका खयाल रखोगे, तो बहुत अच्छा है।

प्रश्नः अगर एक आदमी देखे कि कोई गलत बोल रहा है और वह रोक देता है उसको कि यह गलत है; कठोर शब्द मुंह से निकल जाते हैं, तो सब लोग उसे बोलते हैं कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। इतने कठोर शब्द कहकर उसका दिल दुखाया! लेकिन मैं तो यह समझती हूं कि यह बात जो है, निकलवायी गई है भगवान की तरफ से, कही गई है कि यह गलत है।

नहीं, अगर यह भगवान से निकलवायी गई है, तो वह जो तुम्हारी गद्र्न दबाकर कह रहे हैं कि ये कठोर शब्द निकले, वे भगवान से नहीं निकलवाये? मामला खत्म ही है, उसमें क्या दिक्कत है। तुम्हारी तो भगवान से निकलवायी गई है। और यह जो दूसरे आपसे कह रहे हैं कि तुमने गाली देकर बहुत बुरा किया, यह किससे निकलवायी गई है? यह इनको तुम छोड़ देती हो भगवान के पास। तब बेईमानी हो जाती है। यह बेईमानी चल रही है पूरे वक्त। और जब सभी भगवान से निकलवाया गया है, तब क्या सवाल है!

प्रश्नः जो हो रहा है, आटोमैटिक है, कहलवाया गया है?

नहीं-नहीं, उनसे भी आटोमैटिक हो रहा है। तुम्हीं से आटोमैटिक हो रहा है? और वह जिस आदमी ने बुरा काम किया था, जिसको तुमने गाली दी है, उससे भी आटोमैटिक हो रहा है। और ये बेचारे जो तुमसे कह रहे हैं कि तुमने बहुत कठोर शब्द बोल दिए हैं, यह भी आटोमैटिक हो रहा है।

नहीं, हमारी कठिनाई यह है कि साक्षी का हमें पता नहीं है। इसलिए हम मान लेते हैं कि अगर साक्षी हो

जायें...। अगर का सवाल नहीं है वहां। वह तो पता होगा, तो फिर ये तीनों बातें ही एक हो गयीं। इससे कुछ झंझट न रही। इसमें कोई झंझट न रही। लेकिन हम मान कर सवाल उठाते हैं। हम कहते हैं, 'अगर साक्षी हो गये और फिर ऐसा हुआ।' अभी साक्षी तो हुए नहीं, इसलिए वह जो कि फिर ऐसा हुआ, जो आप सोच रही हैं, वह साक्षी होने के पहले का सोचना है। साक्षी हो गये, तब क्या बात है! फिर कोई बात ही नहीं है। तब कोई सवाल ही नहीं है।

महाभारत में एक बहुत मजेदार बात है। महाभारत में एक बात आती है कि दिनभर लड़ाई चलती है, दिन भर लड़ते हैं। सांझ जब लड़ाई बंद हो जाती है, तो सब एक-दूसरे के शिविरों में जाकर गपशप करते हैं। वे जो दिनभर लड़े थे मैदान पर दुश्मन की तरह और जी-जान लगा दी थी एक-दूसरे को मारने-मिटाने में—जब बिगुल बज जाता, लड़ाई बंद हो जाती, तो फिर एक-दूसरे के शिविर में जाकर गपशप भी होती, बैठकर बातचीत भी होती; रात, आधी रात तक सब चर्चा भी चलती कि कौन मर गया, कौन बच गया। ये वही लोग, जो दिन भर बिलकुल जी-जान से लड़े। बड़े अदभुत लोग हैं। क्योंकि जिससे हम दिनभर लड़े हैं, उससे शाम को हम गपशप करने थोड़े जायेंगे! और जिससे हम शाम को गपशप किए हैं, उससे दूसरे दिन लड़ेंगे कैसे!

पर यह हो सकता है। पर यह जिस तल पर होता है, उसको मानकर नहीं चलना चाहिए कि हां, साक्षी हो गया। ऐसा मानकर नहीं सवाल बनाया जाये। साक्षी हो जाओ। फिर सवाल लाना है। क्योंकि साक्षी कभी कोई सवाल नहीं लायेगा। असल में साक्षी के लिए कोई सवाल ही न बचा। प्रश्न तो उठते हैं हमारे कर्त्ता होने से। साक्षी अगर हो गये, तो जो है, वह है। अब प्रश्न का क्या सवाल है! इसको ठीक से समझ लेना जरूरी है।

हमारे सारे प्रश्न हमारे कर्त्ता के भाव से उठते हैं। अगर कर्त्ता नहीं है तो प्रश्न क्या है। जो है, है। मैंने तो किया नहीं है। प्रश्न कैसे उठे!

कल मुझसे किसी ने एक बहुत बढ़िया बात पूछी। कल मुझसे किसी ने पूछा कि 'आपने कभी किसी से प्रश्न पूछा है?' मैंने तो नहीं पूछा। अपनी पूरी जिंदगी में नहीं पूछा। मैंने कभी किसी से प्रश्न पूछा ही नहीं। कभी मेरे घर के लोगों ने मुझे कहा कि कोई मुनि आए हैं, कोई संन्यासी आए हैं, कोई स्वामी आए हैं। छोटा भी था, तो मैंने कहा, मैं चलता हूं। मेरे पिता मुझे कई दफा कहे कि 'इतनी बातचीत करते हो, कुछ पूछ लो।' मैं क्या पूछूं? क्योंकि अगर मैं पूछूं कि ईश्वर है? और वह संन्यासी कह दे, है, तो मुझे क्या फर्क पड़ेगा! और वह कह दे, नहीं है, तो मुझे क्या फर्क पड़ेगा! यह तो मुझे ही खोजना पड़ेगा न। उसके कहने से तो कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला है। और अगर वह कह दे है, और झूठ बोल रहा हो, तो मैं कहां पता लगाऊं!

तो मेरे घर के लोग कहते कि चार आदमियों से पता लगा सकते हो कि यह आदमी झूठ नहीं बोलता। मैं उन चार आदमियों में किससे पता लगाऊं कि झूठ नहीं बोलते हैं। एब्सर्ड है। कहां पता लगाता फिरूंगा मैं। इसका तो कोई अंत ही न होगा कि उसमें संन्यासी झूठ नहीं बोलता, यह चार से पता लगाऊं। और ये चार झूठ नहीं बोलते, यह फिर सोलह से पता लगाऊं। और वे सोलह सच बोल रहे हैं कि झूठ बोल रहे हैं—इसका कोई अंत नहीं होगा। तो मैंने कहा, मैं पता खुद ही लगा लूंगा। मैं इधर से ही शुरू करूंगा। उधर जाने की कोई

जरूरत नहीं है। किसी से क्या पूछना है?

प्रश्नः जीवन के क्या कारण हैं?

नहीं हैं। हो ही नहीं सकते। वहां जो है, है। उसके लिए न कोई कारण दिया जा सकता है, न कारण है। इसलिए सवाल नहीं है; वहां कोई सवाल नहीं है। लेकिन हमारा जो कर्त्ता है, वह अनरियल है। वह है नहीं। इसलिए वह हर चीज में सवाल उठाता है।

मैं यूनिवर्सिटी छोड़ा, तो जिनके घर पर मैं रहता था, उनको आकर मैंने कहा कि 'आज मैं यूनिवर्सिटी छोड़ आया।' तो उन्होंने कहा, 'अरे! तो पूछ तो लेते। इतने दिन से हमारे साथ हो, आठ वर्ष से, तो हमें कम से कम एक बार तो पूछ लेना था!' तो मैंने उनसे पूछा कि 'जब मैं मरूं, तो आपसे पूछ कर मरूंगा?' तो उन्होंने कहा, 'मुझसे पूछकर कैसे मरोगे?' 'मैं जब जन्मा आपसे पूछकर जन्मा?, उन्होंने कहा, 'नहीं। क्या पूछना, किससे पूछना!' 'असली काम तो बिना पूछे हो जा रहे हैं, तो मैं फालतू काम क्यों पूछने जाऊं!' तो उन्होंने कहा, 'आज नौकरी छोड़ दी। कल अगर खाना न मिले, रोटी न मिले, भूखा मरना पड़े?' मैंने कहा, 'तो मैं भूखा मरूंगा। वह भी मैं किसी से पूछने नहीं जाऊंगा कि भूखा क्यों मर रहा हूं। यह क्या पूछने की बात है! मैं समझूंगा कि भूखे मरने का वक्त आ गया तो भूखा मर रहा हूं।'

उन्होंने कहा कि 'जब कोई मित्र तुम्हें खिलायेगा-पिलायेगा नहीं, ठहरने नहीं देगा'...। वे बहुत नाराज थे। 'कोई ठहरने नहीं देगा, कोई खिलायेगा-पिलायेगा नहीं—फिर क्या करोगे?' मैंने कहा, 'जो उस वक्त हो जायेगा, मैं करूंगा। आपसे मैं यह पूछने नहीं आऊंगा कि क्या करूं? क्योंकि सवाल यह है, जो मेरी समझ में आयेगा, उसमें से मैं कर लूंगा। अगर गड्ढा खोदना पड़ेगा, तो गड्ढा खोद लूंगा। मिट्टी काटनी पड़ेगी, तो मिट्टी काट लूंगा।' उन्होंने कहा, 'न तुम गड्ढा खोदोगे, न तुम मिट्टी काटोगे।' तो मैंने कहा, फिर अगर खाना भी नहीं मिले, गड्ढा भी न खोद सकूं, मिट्टी भी न काट सकूं, कोई खिलाने वाला भी न हो, तो किसी कुएं में किसी खाई में कूद जाऊंगा। लेकिन मैं क्या करूं, यह मैं पूछने नहीं जाऊंगा किसी से। क्योंकि मेरे होने न होने में किसी के भी उत्तर का कोई भी संबंध नहीं है।'

एक बार यह खयाल हममें आ जाये कि हमारे सारे प्रश्न हमारी फॉल्स एंटाइटी हैं, जिससे उठते हैं। वह अपनी रक्षा के लिए सारा इंतजाम कर रही है। वह हजार सवाल उठा रही है, हजार व्यवस्थाएं कर रही है कि ऐसा हो जाएगा, तो क्या करोगे! ऐसा हो जाएगा, तो क्या करोगे! वह सारे इंतजाम में लगी हुई है। और उस सारे इंतजाम में वह मजबूत होती चली जाती है।

अगर ऐसा चलता रहे, तो हर प्रश्न का उत्तर दस नये प्रश्न उठाता चला जायेगा, एंडलेस, जिसका कोई अंत नहीं है। चीजें जैसी हैं, हैं। एक आदमी ने गाली दी है और तुमने उसको चांटा मारा है, और दूसरे ने तुमको चांटा मारा है। चीजें ऐसी हैं, हंसो और घर चले जाओ। इसमें पूछना क्या है?

तुमको आटोमैटिक हुआ, उसको भी आटोमैटिक हुआ। अब आटोमैटिक कौन करवा रहा है—वह कभी मिल जाए, तो उससे पूछना कि यह कैसा आटोमैटिक करवा रहे हो तीन तरह का कि हमको ऐसा हो रहा

है, इनको ऐसा हो रहा है! वह कभी मिलेगा नहीं, और जब तुम उसके पास पहुंचोगी, तो तुम मिट जाओगी—पूछने वाला नहीं रहेगा, उत्तर देने वाला नहीं रहेगा। लेकिन हम मानकर कर लेते हैं। मानकर बहुत दिक्कत हो जाती है। और सब चीजों में तो चलता है। गणित में हम मान लेते हैं कि एक आदमी बाजार गया, उसने एक दुकान से छह आने के केले खरीदे। तीन दर्जन खरीदे, तो कितने आने हुए। हम मानकर चलते हैं।

मुझे बहुत मजा आता था—मेरे एक गणित के शिक्षक थे, वे बहुत नाराज हो जाते थे। वे कहते कि मान लो कि एक आदमी बाजार गया। मैंने कहा कि 'मानें क्यों? कहां गया बाजार?' तो वे कहते थे, 'तुम नासमझ हो। तुमको पता नहीं। यह गणित है, इसमें मानकर चलना पड़ता है।' फिर भी आदमी गया नहीं, तो हम क्यों झंझट में पड़ें? आदमी कहां है—इतना कहना बहुत आनंदपूर्ण था। वे मुझे क्लास से बाहर कर देते थे कि तुम बाहर रहो। वे कहते, 'उसने तीन दर्जन केले खरीदे।' मैं कहता, 'लेकिन खरीदे कब हैं, कहां खरीदे हैं!' लेकिन वे कहते, 'गणित इसके आगे नहीं बढ़ सकता। गणित में तो यह मानकर चलना ही पड़ेगा।' तो मैं कहता कि 'हमें मानकर ही चलना है, तो मान लो कि उसने तीन दर्जन केले खरीदे तो ऐसा क्यों नहीं मानते सरल कि जिसमें कोई ज्यादा झंझट न हो। एक रुपये दर्जन के खरीदे तीन रुपये में खरीद लिए। जबकि मानकर ही चलना है, तो पांच आने, छह पाई के खरीदे, इतनी परेशानी क्यों कर रहे हो?' तो वे कहते, 'तुम समझ ही नहीं पाते!'

उन्होंने मुझे...कभी उनकी अक्ल में नहीं आई बात कि मैं मजाक कर रहा हूं। वे यही सदा समझे कि 'तुमको गणित कभी अक्ल में आयी नहीं। तुम गणित समझने के योग्य नहीं हो, तुम बाहर खड़े रहो क्लास के। पूरी क्लास को खराब कर देते हो।' क्योंकि बाकी लड़के पूछने लगे कि मानें क्यों? अगर मानें न तो बहुत मुश्किल हो जाती है। और सारा खेल जो है वह मानकर ही चल रहा है कि ऐसा हो तो ऐसा हो। ऐसा हो, तो ऐसा हो। लेकिन वह पहली कड़ी क्यों मानने की जरूरत है?

साक्षी हो जाओ, फिर देखनाः न कोई बाजार जाता, न कोई केले खरीदता, न कोई हिसाब है। लेकिन वह साक्षी हो जाने के बाद, उसके पहले नहीं। सब गणित उसके पहले है, उसके बाद कोई गणित नहीं है।

'सपोज' की कोई जगह नहीं है जिंदगी में और हमारे सब काम सपोज से चल रहे हैं। पति घर लौट रहा है, तो वह सपोज करके आ रहा है कि पत्नी यह कहेगी, इतनी देर कहां थे, तो क्या जवाब दूंगा। सब सपोजिशन चल रहा है। पत्नी घर तैयार हो रही है कि पति आ रहा है वह जरूर कहेगा कि दफ्तर में काम था, इसलिए देर हो गई। तो फोन करके पता लगा लूं कि दफ्तर पांच बजे तक था कि नहीं! यह सब सपोजिशन चल रहा है। बड़ी सपोजिशन, बड़ी झंझट हो रही है, क्योंकि दोनों का गणित तैयार है। और वे गणित टकरा जाने वाले हैं, क्योंकि दोनों के अपने सपोजिशन हैं।

सीधी बात है कि पति देर से आ रहा है, बात खत्म हो गई। अब इसमें और क्या जांच-पड़ताल करने का है! पति देर से आनेवाला है। ऐसा आदमी मिला है, जो देर से आता है, बात खत्म हो गयी।

मगर नहीं, हम जिंदगी जैसी है, वैसा स्वीकार नहीं करते। इसलिए हम उसके चारों तरफ जाल बुनते रहते हैं कि ऐसा होगा, ऐसा होगा। और तब एक दिमाग का जाल है। फिर हम कहते हैं—मन शांत नहीं होता, विचार बहुत चक्कर काटते हैं। विचार तुम चौबीस घंटे पैदा कर रही हो। सब विचार सपोजिशन पर खड़े हैं—सब विचार। कि मान लो कि ऐसा हो जाये, बस उस पर सब खेल चल रहा है। जैसा हो रहा है, वैसा हो

रहा है। जैसा होगा, वैसा होगा। ऐसा खयाल में आ जाए तो विचार की कहां गुंजाइश है?

प्रश्नः जिस तरह विचार हैं, वह उनका उठना स्वाभाविक है?

स्वाभाविक तो सभी है। लेकिन वह भी मनुष्य का स्वभाव है, जो नहीं हो सकता। अस्वाभाविक होना भी मनुष्य का स्वभाव है। सिर्फ मनुष्य ही हो सकता है। कुत्ता नहीं हो सकता, बिल्ली नहीं हो सकती—मनुष्य ही हो सकता है। मनुष्य के स्वभाव की एक खूबी है कि वह अस्वाभाविक हो सकता है। वह उसका स्वभाव है।

प्रश्नः यह जो सपोजिशन चल रहे हैं, ये सारे भय के कारण चल रहे हैं?

हां, सारा भय है—सारा। हमने कितने सपोज किये हुए हैं कि स्वर्ग होगा। सपोज—स्वर्ग हो, नर्क हो। पाप का फल मिलता हो, पुण्य का फल मिलता हो। भगवान हो, जवाब पूछे। कयामत आ जाये और उठाये और पूछे कि तुमने क्या किया? यह सारा सपोजिशन है। कुछ मतलब नहीं है इसका। लेकिन मनुष्य के स्वभाव का यह हिस्सा है कि वह अस्वाभाविक हो सकता है। अस्वाभविक होता है, तो दुख पाता है। दुख का मतलब है, अस्वाभाविक होने का फल। स्वाभाविक होता है, सुख पाता है। सुख का मतलब है, स्वाभाविक होने का फल। लेकिन स्वाभाविक होने की चेष्टा मत करना, नहीं तो वह भी अस्वभाव ही होगा। अस्वाभाविक होने को समझ लेना, बात खत्म हो जायेगी। धीरे-धीरे स्वभाव आ जायेगा। चीजें जैसी हैं, हैं। यह खयाल आ जाये, तो ध्यान के लिए बड़ी संभावना बन जाये।

प्रश्नः तो अहं भाव की निवृत्ति कैसे होगी?

उसकी निवृत्ति आप कर ही नहीं सकते हैं। क्योंकि जो कह रहा है कि निवृत्ति कैसे करूं, वही है अहं। इसकी आप निवृत्ति कर ही नहीं सकते। अहंकार इतना सूक्ष्म है कि जब वह यह पूछता है कि अहंकार को कैसे मिटायें, तो वही पूछ रहा है। सवाल और कहीं से नहीं आ रहा है, क्योंकि अहंकार के पीछे तो सवाल ही नहीं है। वहां अहंकार है ही नहीं। सवाल अहंकार का हिस्सा है। साक्षी होने की जो चित्त दशा है, उसका हिस्सा नहीं है।

अब यह समझ लीजिएः पानी है, पानी पूछता है कि मैं अपनी तरलता कैसे मिटाऊं, लिक्विडिटी कैसे मिटाऊं? तो पानी तो तरल होकर ही हो सकता है। तो पानी तो तरलता नहीं मिटा सकता है, क्योंकि पानी की परिभाषा में तरलता है। तरलता उसका हिस्सा है। हम उसको कहते हैं कि सौ डिग्री तक गर्म हो जाओ, कि शून्य डिग्री के नीचे ठंडे हो जाओ। शून्य डिग्री के नीचे होकर ठंडे हो जाओगे, तो पानी रह ही नहीं जायेगा, बर्फ हो जाओगे। तो वह कहता है, 'वह तो ठीक है। मान लिया कि बर्फ हो गये, लेकिन तरलता कैसे मिटेगी!'

हम उससे कहते हैं कि 'सौ डिग्री तक गर्म हो जाओ, तो तुम भाप हो जाओगे।' वह कहता है कि 'मान लिया कि भाप हो गये, लेकिन तरलता कैसे मिटेगी!' नहीं, तरलता तो पानी के सौ डिग्री के बीच का ही खेल है।

अहंकार जो है, वह कर्त्ता की डिग्रियों के बीच का खेल है। या तो उससे नीचे गिर जाओ, जैसे बेहोशी में गिर जाता है आदमी। तो अहंकार चला जाता है। वह फ्रोजननेस की स्थिति है। बर्फ हो गये। नीचे गिर गये। इसलिए तो शराब का इतना शौक है। अहंकार से छुटकारा—नीचे गिरकर—बर्फ की स्टेट में ला देता है वह आदमी को। लेकिन जिंदगी बहुत उष्ण है। ज्यादा देर बर्फ नहीं रह सकते। जिंदगी की उष्णता पिघलाकर फिर पानी बना देती है। सुबह होती है, फिर नशा नष्ट हो जाता है। फिर होश आता है, फिर पता चलता है, मैं हूं।

तो एक रास्ता है कि बेहोश हो जायें, अहंकार के बाहर हो जायेंगे। लेकिन इसका आपको पता नहीं चलेगा कि बाहर हो गये, क्योंकि बेहोश होकर बाहर हुए हैं। और दूसरा रास्ता यह है कि आप साक्षी में पहुंच जायें, तो आप पायेंगे कि बाहर चले गये हैं। लेकिन चूंकि साक्षी में गये हैं, तो साक्षी तो होश है, इसलिए आपको यह पता नहीं चलेगा कि अहंकार नहीं रहा।

तो साक्षी की अवस्था और बेहोश की अवस्था में बहुत बार भूल हो जाती है। इसलिए मेरी समझ है कि रामकृष्ण कभी भी साक्षी की अवस्था में नहीं पहुंचे। बेहोशी की अवस्था में पहुंच गए और नीचे गिरते रहे। लेकिन ये अवस्थाएं बिलकुल एक जैसी लगती हैं। क्योंकि पानी दोनों हालत में तरल नहीं रह जाता। एक गुण तो दोनों में बराबर है, बर्फ में और भाप में, कि तरलता खो जाती है।

प्रश्नः मुक्ति की कोशिश क्या आत्मा की ही वृत्ति है?

आत्मा की वृत्ति नहीं है यह। कोशिश करने का तो सवाल है नहीं। कोशिश करियेगा, तो भी नहीं मार सकते। वह भी अहंकार का हिस्सा है—अहंकार को बढ़ाने की कोशिश करो कि मारने की कोशिश करो, दोनों हालत में अहंकार रहेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है।

तो मैं कोशिश की बात नहीं कर रहा, मैं तो यह कह रहा हूं कि कर्त्ता होने की स्थिति से छलांग अपने आप घटती है। देखने को वहां कोई बचेगा नहीं, यही तो सारी गड़बड़ है। वह सपोजिशन का मामला है। हम कहते हैं, साक्षी बनकर अहंकार को...। साक्षी जहां होगा, वहां अहंकार कैसे होगा! दोनों बातें साथ ही होने वाली हैं। साक्षी हुए, तुम पाओगे कि अहंकार न था, न है, न हो सकता है।

जैसे कि सुबह कोई आदमी कहे—रात सपना देखे और सुबह कहे कि सपने को कैसे तोड़ें? हम उससे कहें, 'तुम तो नींद तोड़ो, सपने की फिक्र छोड़ो।' वह कहे, 'हां, यह बात ठीक है। तो फिर जागकर सपने को देखते रहें?' तो क्या मतलब रहेगा! वह जागकर कैसे सपने को देखता रहेगा! वह जागने के साथ सपना टूट जायेगा। जागते से ही सपना देखने को बचेगा नहीं। वह नींद का हिस्सा है।

सपना मूल नहीं है, नींद मूल है। तो नींद तो बिना सपने के हो सकती है; लेकिन सपना बिना नींद के नहीं हो सकता। इसलिए सपने से आप मत लड़ो, क्योंकि अगर सपने में तुम सपने से भी लड़े, तो तुम नये सपने पैदा कर सकते हो, और कुछ नहीं कर सकते। जाग जाओ; सपने की फिक्र ही छोड़ो। वह नींद का

हिस्सा है। तुम जाग गये, तो वह नींद के साथ गया, वह बचेगा नहीं कहीं।

हमारे कर्त्ता होने की जो नींद है, अहंकार उसका सपना है। अहंकार से लड़े, तो नींद में चलेगी लड़ाई। कहीं पहुंचने वाले नहीं हैं।

दो तरह के नींद के सपने हो सकते हैं कि एक आदमी कहे, कि अब मैं बिलकुल निरहंकारी हो गया। मगर नहीं हो गया निरहंकारी। होगा कौन निरहंकारी? एक आदमी कहे, मैं तो बड़े अहंकार से भरा हुआ हूं। एक कहे, मुझमें तो अहंकार बचा ही नहीं। लेकिन दोनों में 'मैं' बचे हुए हैं। दो तरह की घोषणाएं कर रहे हैं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। 'मैं' मौजूद है और घोषणा कर रहा है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

नहीं; एक आदमी जाग गया है। उससे पूछो कि अहंकार मिट गया तुम्हारा? वह कहेगा, 'था ही नहीं, क्योंकि होता, तो मिटाना मुश्किल था। मिटा कैसे? जो है, वह कभी मिटता नहीं।' वह कहेगा, 'था ही नहीं।' पूछो, 'क्या अहंकार से छुटकारा हो गया तुम्हारा? और वह कहेगा, 'हम कभी फंसे न थे, बंधे न थे।' तब हमें उसकी भाषा समझ में नहीं आती।

हम कहते हैं, 'बड़ी मुश्किल की बात है। हम तो उसी से फंसे हैं। कोई तरकीब बता दो कि तुम कैसे निकल गये बाहर!' वह कभी बाहर निकला नहीं। उसने जागकर देखा और उसने पाया कि नींद में सपना देखा था कि बंधे हैं।

इसलिए मेरा सारा जोर इस बात पर है कि जिंदगी जैसी है, उसको चुपचाप स्वीकार कर लो। जो है, उसे पूरी तरह स्वीकार कर लो। जिस दिन स्वीकृति पूरी हो जायेगी, इंच मात्र भी अस्वीकृति तुम्हारे भीतर न होगी, उसी दिन तुम पाओगे—घटना घट गयी। उसके बाद एक क्षण रुकने की जरूरत नहीं है घटना को। बस, उस क्षण तक घटना नहीं घट पायेगी। वह घट जायेगी और उसके पार फिर कुछ नहीं है। उसके पार यह भी पता है कि पहले भी नहीं था। इसलिए जो कोई कहता है कि अहंकार छोड़ो, वह गलत बात कहता है। गलत बातें कह रहा है। अहंकार छोड़ा नहीं जाता, क्योंकि छोड़ना-पकड़ना सब अहंकार की तृप्ति है।

जो हमारी सारी तकलीफ है, वह ऐसी है, जैसे कुत्ता पूंछ को पकड़ रहा है अपनी। पास दिखायी पड़ती है बिलकुल, मुंह के पास रखी है बिलकुल। उचकता है। जब वह उचकता है, तब पूंछ भी उचक जाती है। फिर उतना ही फासला रह जाता है। फिर वह देखता है, पास तो बिलकुल है। जरा छलांग ठीक से लगानी चाहिए, ठीक से पकड़ नहीं पाया, क्योंकि मैं जरा चूक गया। ऐसी ताकत से उछलो कि पूंछ मिल जाये वहां, जहां है! वह जितनी ताकत से उछलता है, उतनी ताकत से पूंछ उछल जाती है। क्योंकि पूंछ कुत्ते का हिस्सा है। तो वह सोचता है, दूसरी तरफ से पकड़ो। नहीं आती, तो दूसरी तरफ से पकड़ो। मुंह फिराओ। उलटी तरफ से पकड़ लो। उधर से भी छलांग लगाता है, तो वह पाता है कि पूंछ हमेशा उचक जाती है। उसको यह पता नहीं चल पाता—पता चले भी कैसे कि पूंछ उसकी छलांग से जुड़ी हुई है!

इसलिए वह धन इकट्ठा करता है, तो अहंकार मजबूत हो जाता है। तो वह सोचता है कि धन छोड़ दो। वह धन छोड़ देता है, तो अहंकार मजबूत हो जाता है। वह पूंछ है उसकी जुड़ी हुई। वह कहता है, गृहस्थी में अहंकार से छुटकारा नहीं हुआ, संन्यासी हो जाओ। फिर वह संन्यासी का अहंकार पकड़ लेता है। अंतर कुछ पड़ता नहीं है। अंतर पड़ नहीं सकता। कुत्ते को किसी दिन समझना पड़ेगा कि पूंछ अपनी है, पकड़ने की

जरूरत नहीं है। अपने पीछे लटकी हुई है। इसको छोड़ो। इसकी झंझट में ही पड़ने की जरूरत नहीं है। यह पकड़ना क्या है, यह पकड़ी ही हुई है। बस, कुत्ता मुक्त हो गया। अब वह पूंछ को पकड़ता नहीं, अब वह शान से चला जा रहा है!

जो सारी कठिनाई है हमारी, वह कठिनाई बहुत ही क्रीशियस है, क्योंकि जो हम करते हैं, उससे वह कठिनाई और बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। कुत्ता पागल हो सकता है। इतनी जोर से छलांग लगाये पकड़ने को पूंछ कि पगला जाये। दिमाग खराब हो जाये उसका। उसको पूंछ इतनी करीब लगती है कि वह सोचता है, इस बार चूक गया, अगली बार पकड़ लेंगे। दूर तो दिखती नहीं, इतनी पास है। इससे भी दूर की चीजें पकड़ ली हैं उसने सदा, यह तो पूंछ है। उतने दूर मिठाई पड़ी थी, उसने छलांग लगाई और पकड़ ली। उतने दूर आदमी जा रहा था, दौड़ा और पकड़ लिया। दूर-दूर की चीजें पकड़ लीं, तो कुत्ते के मन को बड़ा दुख होता है कि यह जो पूंछ इतने पास है, यह चूकी जा रही है! तो मन बड़ा क्रोध में भरता है। क्रोध से जोर से छलांग बढ़ती है।

संन्यासी और गृहस्थ जो हैं, करवट बदले हुए पूंछ पकड़ रहे हैं; और कुछ नहीं कर रहे हैं। वह इधर से पकड़ रहा है, वह उधर से पकड़ रहा है। पूंछ को पकड़ो ही मत।

प्रश्नः (रिकार्डिंग अस्पष्ट)

वे तो यह कहेंगे। हरिद्वार गयीं, यह आपकी गलती। उनको महात्मा समझा—यह आपकी भूल। वे क्या करें! आप तो लौटने का इंतजाम करती हैं कि लौटो। टिकिट खरीदो और वापस जाओ। अगर हरिद्वार न जाओ, कुछ दिन में महात्मा बंबई, इधर आपके पास—कि माई, कुछ जानना हो, तो हम बताने आये हैं! उनसे कहना कि बाबा, कुछ नहीं जानना है, जा। वह हरिद्वार चला जायेगा।

प्रश्नः परमात्मा जब मिल जायेगा, तब क्या हम दूसरे के लिए भी कुछ करेंगें?

बिलकुल एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। दूसरा तो बचता नहीं है। वह तो झंझट है। सपोजिशन की वजह से हम परेशान हैं। परमात्मा की अनुभूति होने पर दूसरा बचता नहीं है। स्व भी नहीं बचता। यह सारी कठिनाई जो है हमारी कि हम पहले से पूछ रहे हैं। ये सारे जो सवाल हैं, ये ऐसे सवाल हैं कि हम पहले से पूछ रहे हैं। यह ऐसा मामला है कि एक आदमी बैलगाड़ी में बैठा है। उसको हमने कहा कि हवाई जहाज भी होता है। उस आदमी ने कहा, 'बैल कितने लगते हैं हवाई-जहाज में?' हमने कहा कि, 'बैलगाड़ी से बहुत तेज चलता है।' उसने कहा, 'बैल तो हजार दो हजार बांधने पड़ते होंगे!' हमने कहा, 'भई, बैल लगते नहीं।' उसने कहा, 'क्या बातें कर रहे हैं! अगर चलता है, तो बिना बैल के चलेगा कैसे! बिना बैल के चलेगा कैसे? हांकते रहने वाला रहता है?' 'हांकने वाला नहीं रहता है। क्योंकि बैल ही नहीं रहते।' वह कहे कि 'बिना हांकने वाले के कहीं चल सकता है?' मेरा मतलब समझे न!

वह जो आदमी है, पूछता है, 'कितना बड़ा रास्ता बनाना पड़ता है? हवाई जहाज के चलने के लिए

कितना बड़ा रास्ता बनाना पड़ता है?' 'उसके लिए रास्ता बनाना नहीं पड़ता।' उसकी जो कठिनाई है, वह कठिनाई बैलगाड़ी में बैठकर हवाई जहाज के संबंध में प्रश्न पूछने की कठिनाई है, जो स्वाभाविक है। हमारी सबकी कठिनाई यही है।

तो मैं यह कहता हूं कि ये प्रश्न अर्थ नहीं रखते। क्योंकि हम जो भी प्रश्न करेंगे, वे प्रश्न गड़बड़ होंगे। गड़बड़ ही होने वाले हैं वे। क्योंकि हमें उस जगह का कोई पता नहीं है। कोई पता नहीं कि वहां क्या होगा। उस संबंध में बिलकुल ही अज्ञात जाना पड़ेगा तुम्हें। उत्तर पहले मिल भी नहीं सकते। और इसलिए सब उत्तर नकार के होंगे, निगेटिव होंगे। सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि 'नहीं, बैल नहीं होते हैं'—बैलगाड़ी वाले से—'इतना तू पक्का मान, एक बात पक्की है कि बैल नहीं होते हैं।' और यही उसकी तकलीफ है, क्योंकि बैल अगर हों, तो वह समझ भी ले कि हवाई जहाज, ठीक है, बड़ी बैलगाड़ी होगी। यही उसकी तकलीफ है। हम उससे कहते हैं, 'बैल नहीं होते हैं।' वह कहता है, 'आप निषेधात्मक बताते हैं। आप हमको पॉजिटिवली बताओ। बैल नहीं हो, तो घोड़ा होता है। क्या होता है? बस, पॉजिटिवली बताओ।' बैलगाड़ी वाले के पास जो भाषा है, उससे कुछ भी संबंध नहीं रह गया है।

जब हम पूछते हैं कि जब परमात्मा मिल जायेगा, तो फिर हम दूसरे के लिए कुछ करेंगे? तब दूसरा बचेगा नहीं, आप बचेंगे नहीं। कर्त्ता बचेगा नहीं। होना बचेगा। और होना होता रहेगा—दूसरे के लिए भी, अपने लिए भी, सबके लिए भी। होना होता रहेगा। आपको कुछ करने जाना नहीं पड़ेगा।

अभी आपको करने जाना पड़ता है। अभी रास्ते पर एक आदमी गिर पड़ता है, तो आपको सोचना पड़ता है कि उठायें कि नहीं उठायें। इसका डिसीजन लेना पड़ता है कि इसको उठायें कि न उठायें। जरा उसकी चोटी उठाकर देखनी पड़ती है कि चोटी है कि नहीं! अगर मुसलमान हो, तो नाहक उठाने का पाप लग सकता है। हिंदू हो, तो पुण्य मिल जाये। चोटी उठाकर देखनी पड़ती है।

यह जो अभी हो रहा है, अब आदमी यह पूछेगा कि समझ लो परमात्मा मिल गया है, फिर हम इसकी चोटी उठाकर देखेंगे कि नहीं, कि चोटी है कि नहीं! चोटी होगी तो भी परमात्मा है, चोटी नहीं होगी तो भी परमात्मा है। चोटीवाला परमात्मा, एक गैर-चोटी वाला परमात्मा—उठाने में उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

फिर यह भी सवाल नहीं होगा कि उठायें कि नहीं। क्योंकि उठायें कि नहीं, यह सवाल तब उठता है, जब कर्त्ता होता है। नहीं, हम आदमी को गिरते देखेंगे और अपने को उठाते देखेंगे। इससे भिन्न कुछ बात नहीं है। एक आदमी गिरा, यह दिखायी पड़ेगा और हमने उसको उठाया, यह भी दिखाई पड़ेगा। और इन दोनों में कहीं कर्त्ता का सवाल नहीं उठता कि मैं उठाऊं कि न उठाऊं; कि यह करूं कि न करूं। यह सवाल नहीं है।

प्रश्नः स्वानुभव के पहले तो दूसरे से पूछना ही पड़ेगा ना?

स्वानुभाव के अतिरिक्त कोई रास्ता ही नहीं है। दूसरे से पूछ रहे हैं, इसलिए खयाल ही नहीं आ रहा है। दूसरे से पूछ रहे हो, इसलिए खयाल नहीं आ रहा है। नहीं पूछो, तो अभी तुमको भी खयाल आ जाये।

प्रश्नः अपने आप कैसे मालूम पड़ेगा?

अपने आप ही मालूम पड़ेगा, और नहीं मालूम पड़ेगा, तो नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन दूसरे से तो कभी नहीं मालूम पड़ेगा। ।

पूछो—वह भी हिस्सा है भटकने का। भटकना जरूरी है अपने घर पर लौट आने के लिए। और जितना जो भटक ले, उतना अच्छा है। क्योंकि जितना थका-मांदा लौटेगा, उतना घर में विश्राम करेगा आकर। तो भटकना भी जरूरी है। एकदम जरूरी है। भटकना हिस्सा है जिंदगी का। उसके भटकने में कुछ भी बुरा नहीं है। पूछो—भटको। जब भटक जाओगे और किसी से न मिलेगा, तब क्या करोगे? फिर लौट ही आना पड़ेगा न आपको!

प्रश्नः हजारों वर्ष से लोग भटक रहे हैं।

हजारों वर्ष से कहां भटक रहे हो तुम? एक वर्ष भी भटक लो, बहुत है। भटकते भी नहीं हो। ऐसे अपनी जगह पर खड़े हुए नाचते रहते हैं, उचकते रहते हैं! भटक भी लो, तो कुछ हो जाये।

अब हजारों वर्ष से भटक रहे हैं! कौन भटक रहा है? तुम भटक रहे हो हजारों वर्ष से? एक दिन भी भटक लो चौबीस घंटे पूरी तरह से, तो पहुंच जाओ घर। लेकिन भटकते भी नहीं हो, उसमें भी ताकत नहीं लगाते हो। खड़े हैं। उछलकूद कर रहे हैं वहीं और सोच रहे हैं कि भटक रहे हैं, बड़ी खोज कर रहे हैं! कुछ खोज-वोज नहीं कर रहे हैं। कोई अपनी गीता पर उछल रहा है। कोई अपनी कुरान पर उछल रहा है। कोई बाइबिल पर खड़ा हुआ उछल रहा है। गीता, कुरान, बाइबिल—मरे जा रहे हैं उछल-कूद की वजह से। तुम कहीं जा नहीं रहे हो, अपनी किताब पर खड़े नाच रहे हो। चीजें तो दिखायी पड़ेंगी न, भटकने से ही दिखायी पड़ेंगी। फिर उसमें हर्जा नहीं है।

पूछो—उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन सब पूछना व्यर्थ सिद्ध होगा। आखिर में तुम पाओगे कि कहां के पागलपन में पड़े हुए हैं। क्या पूछना है? किससे पूछना है? कौन बतायेगा! कोई बता भी देगा, तो मैं कैसे जान लूंगा! यह पता चलेगा। एक रेवोल्यूशन होगा, तुम्हारे भीतर से होगा यह। कोई नहीं बतायेगा, कोई बताने वाला नहीं है। कोई जानता होगा, तो भी नहीं बता सकता। यह कोई बताने की बात नहीं है। तब क्या करोगे?

जब कुछ करने को न बचेगा, तब तुम ध्यान कर सकोगे, नहीं तो नहीं कर सकोगे। जब तक तुम्हें कुछ भी करने को बच गया है, तब तक तुम वही करोगे, ध्यान नहीं करोगे।

यही तो तकलीफ है। वही मैं पूरे वक्त कह रहा हूं कि तुम वही मानकर चल रहे हो कि एक आदमी बाजार गया और उसने केले खरीदे। उसने खरीदे भी नहीं और गया भी नहीं। वह तो मान कर चलते हो न, कि अगर ऐसी आपकी बात मान लेंगे, तो ऐसा हो जायेगा! ऐसा करके देखो न!

वह तो समझ में आ गयी बात, तो करने को थोड़े ही रहेगी।

बंबई, दिनांक 10 मार्च, 1970
पांचवां प्रवचन
ध्यान है अक्रिया

मेरे प्रिय आत्मन,

कल मैंने कहा कि ध्यान अक्रिया है, तो एक मित्र ने पूछा है कि वे समझ नहीं सके कि ध्यान अक्रिया कैसे है? क्योंकि जो हम करेंगे, वह तो क्रिया ही होगी, अक्रिया कैसे होगी?

मनुष्य की भाषा के कारण बहुत भूल पैदा होती है। हम बहुत-सी अक्रियाओं को भी भाषा में क्रिया समझे हुए हैं। जैसे हम कहते हैं, 'फलां व्यक्ति ने जन्म लिया।' सुनकर ऐसे लगता है, जैसे जन्म लेने में उसको भी कुछ करना पड़ा होगा। जन्मना एक क्रिया है। हम कहते हैं, 'फलां व्यक्ति मर गया', तो ऐसा लगता है कि मरने में उसे कुछ करना पड़ा होगा। हम कहते हैं कि 'कोई सो गया', तो ऐसा लगता है कि सोने में उसे कुछ करना पड़ा होगा। नींद क्रिया नहीं है, मृत्यु क्रिया नहीं है, जन्म क्रिया नहीं है, लेकिन भाषा में वे क्रियाएं बन जाती हैं।

आप भी कहते हैं कि 'मैं कल रात सोया।' लेकिन अगर कोई आप से पूछे कि 'कैसे सोये? सोने की क्रिया क्या है?' तो आप कठिनाई में पड़ जायेंगे। सोये आप बहुत बार हैं, लेकिन सोने की क्रिया न बता सकेंगे कि सोये कैसे। हो सकता है कि तुमने तकिये लगाये, बिस्तर लगाया, कमरे में अंधेरा किया, लेकिन इनमें से सोने की क्रिया कोई भी नहीं है। यह भी हो सकता है, तकिया भी हो, बिस्तर भी हो, अंधेरा भी हो और नींद न आये! तकिया, बिस्तर और अंधेरा नींद नहीं है। हां, इनकी उपस्थिति में नींद का आना सरल हो जाता है, लेकिन नींद का आना अलग ही बात है।

और आप कभी नींद नहीं ला सकते, नींद आती है। इसलिए नींद अक्रिया है। आप ला नहीं सकते। पकड़ नहीं सकते, कोशिश नहीं कर सकते। फिर भी नींद आ सके, इसके लिए तैयारी कर सकते हैं। प्रकाश में नींद आने में कठिनाई पड़ेगी, अंधेरे में आसानी होगी। नीचे कांटे बिछे हों, तो नींद आने में कठिनाई पड़ेगी। ठीक बिस्तर हो, तो आसानी होगी, लेकिन फिर नींद आप नहीं लाते हैं, नींद आती है।

जब मैं कहता हूं, ध्यान अक्रिया है, तब मेरा मतलब यही है कि आप जो भी कर रहे हैं, वह ध्यान की बाहरी व्यवस्था है। फिर उस व्यवस्था में ध्यान आयेगा, आप ला नहीं सकते हैं। आप सिर्फ ऊपरी इंतजाम कर रहे हैं। ऊपरी इंतजाम का क्या मतलब है, यह भी समझ लेना चाहिए। इसलिए दुनिया में ध्यान की कोई विधि, कोई मैथड नहीं है। न नींद की कोई विधि है, न मैथड है। रिचुअल है, क्रियाकाण्ड है नींद का।

एक छोटा बच्चा है, वह अगूंठा डालकर मुंह में, सो जाता है। अगूंठा बाहर खींचो और उसको नींद आना मुश्किल हो जाये। उसने एक इंतजाम कर रखा है, एसोसिएशन बना रखा है कि जब भी उसका अगूंठा मुंह में गया कि उसका मन नींद के लिए तैयार हो जाता है। अगूंठे का मुंह में जाना सिगनल का काम करता है उसके लिए कि अब नींद आ जायेगी और कुछ भी नहीं है। तकिया और बिस्तर भी सब सिगनल का काम करते हैं, और कुछ भी नहीं। इसलिए नये मकान में, नये घर में, नये तकिये पर, नये बिस्तर पर नींद मुश्किल

हो जाती है। थोड़ा-सा भेद हो गया है। छोटे कमरे में सोने का आदी बड़े कमरे में सोने में थोड़ी अड़चन पाता है। मन कहता है, यह वह जगह नहीं जहां रोज नींद आती है! थोड़ी बाधा डालता है।

तो ऊपरी इंतजाम का मतलब है कि मन बाधा न डाले, ऐसी व्यवस्था कर लेंगे। अब जैसे, यहां जो भी हम करेंगे, वह ध्यान नहीं है वस्तुतः। ध्यान तो आयेगा। हम सिर्फ इतना ही करेंगे कि हमारी तरफ से ध्यान में जो बाधाएं उपस्थित होती हैं, वह हम अलग कर देंगे और प्रतीक्षा करेंगे। सुबह सूरज निकला है। आप दरवाजा बंद करके बैठे हैं। सूरज भीतर नहीं आ रहा है। आप मुझसे पूछते हैं, 'हम सूरज को भीतर लाने के लिए क्या करें? टोकरियों में सूरज की रोशनी भर लायें? गठरियों में बांध लें? मजदूर लगायें? क्या करें? सूरज की रोशनी को भीतर लाना है।' मैं आपसे कहता हूंः आप न ला सकेंगे। सूरज की रोशनी भीतर आ सकती है। लायी नहीं जा सकती, इसको क्रिया नहीं बना सकते। आप कृपा करके इतना ही करें कि सूरज की रोशनी में जो बाधा पड़ रही है दरवाजा बंद होने की, उतना दरवाजा भर खोल दें। वह क्रिया है, दरवाजा खोलना क्रिया है, फिर सूरज आयेगा। वह क्रिया नहीं है। हालांकि आप लोगों से कह सकते हैं, आज मैं दरवाजा खोलकर सूरज को भीतर ले आया, लेकिन आप गलत कह रहे हैं। आपने सिर्फ दरवाजा खोला। आने का काम सूरज ने किया, आपने नहीं किया। लेकिन दरवाजा न खोलते, तो सूरज को रोकने का काम आप करते।

इसका मतलब यह हुआ कि ध्यान को हम रोक सकते हैं, ला नहीं सकते। और हम सब मिलकर ध्यान को रोक रहे हैं। तो जब मैं कहता हूं कि यह व्यवस्था कर लें, तो उसका मतलब है कि ध्यान को रोकने का जो आपका इंतजाम है, कृपा करके उसको हटा दें—ध्यान आ जायेगा; दरवाजा खोल दें—सूरज आ जायेगा। और इसीलिए जिस दिन ध्यान आयेगा, उस दिन आप जाकर किसी से कह न सकेंगे कि मुझे ध्यान मिल गया। उस दिन आप कहेंगे, प्रभु की कृपा। जिसको मिलेगा, वह यह नहीं कह सकेगा कि मैंने पा लिया। वह कहेगा, 'उसका प्रसाद!' वह कहेगा, 'उसकी ग्रेस!'

और अगर परमात्मा को नहीं मानता तो वह कहेगा, मुझे कुछ पता नहीं कि कहां से आ गया! अनजान, अज्ञात से आगमन हुआ—मेरा कोई हाथ नहीं था। जिसको मिलेगा, यह न कह सकेगा कि मैंने पा लिया, क्योंकि उसे साफ दिखायी पड़ेगा कि मैंने तो पाने की बहुत कोशिश की, मैं न पा सका। इसलिए जिन्होंने पाया है, वे इतना ही कहेंगे कि हम बाधा न बने—बस।

जिस दिन बुद्ध को ज्ञान मिला, किसी ने पूछा कि 'आपने कैसे पाया?' तो बुद्ध ने कहा, 'जब तक पाने की कोशिश की, तब तक तो नहीं पाया। जिस दिन बाधाएं छोड़ दीं; अपनी तरफ से जो हमने इंतजाम किये थे, दीवाल-परकोटे उठाये थे, वे गिरा दिये, उस दिन पा लिया। वह मिला ही हुआ था, वह द्वार पर ही खड़ा था, लेकिन द्वार बंद थे।' तो आप द्वार बंद कर सकते हैं, खोल सकते हैं, लेकिन प्रकाश को ला नहीं सकते। प्रकाश आयेगा।

तो जब मैंने कहा, ध्यान अक्रिया है, तो मेरा मतलब है, आपकी क्रिया नहीं है। लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि आपको कुछ भी नहीं करना है। दरवाजा तो खोलना ही है, बिस्तर तो लगाना ही है, तकिया तो लगाना ही है, अंधेरा तो करना ही है। नींद आयेगी, लेकिन उसकी पूर्व-भूमिका भी बना लेनी जरूरी है। कभी-कभी बिना पूर्व-भूमिका के भी आती है। अगर बहुत थक गये हों, बहुत देर सोना न मिला हो, तो पत्थर

पर भी आती है, रोशनी भरी दोपहरी में भी आती है। तकिये की भी जरूरत नहीं पड़ती, रात की भी आवश्यकता नहीं होती, शांति की भी जरूरत नहीं होती, बाजार में भी आ सकती है, सड़क के रास्ते पर भी आ सकती है। कभी आती है, लेकिन उतना थका होना जरूरी है। उतना कोई थका हुआ नहीं है।

परमात्मा की, सत्य की इतनी प्यास हो जाये, इतने थक गये हों, इतने दौड़े हों, इतना चाहा हो, इतना खोजा हो, तो ध्यान बिना किसी इंतजाम के भी आता है। इसलिए जब किन्हीं को बिना इंतजाम के आ जाता है, तो वे दूसरों से कहते हैं कि इंतजाम की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इतने इंतजाम की जरूरत है, फिर भी यह इंतजाम ध्यान का नहीं है। यह फर्क समझ लेना है। यह सिर्फ पूर्व-भूमिका है, जिसमें आ सके, इसके लिए हम द्वार खोल देते हैं। इस पूर्व-भूमिका के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण जो सूत्र है, वह मैं आपको कह दूं, फिर कोई कहने से ही समझ में नहीं आ सकता; प्रयोग करने से ही समझ में आ सकता है।

पहली बात, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ध्यान में प्रवेश के लिए, वह श्वास है। श्वास द्वार है। जीवन की समस्त महत्वपूर्ण चीजों का द्वार श्वास है। श्वास के ही मार्ग से जन्म आता है, श्वास के ही मार्ग से मृत्यु आती है, श्वास के ही मार्ग से ध्यान आता है, श्वास के ही मार्ग से परमात्मा आता है। श्वास जो है, वह मार्ग है। श्वास से ही संबंधित होकर जीवन प्रगट होता है और श्वास से ही विच्छिन्न होकर जीवन अप्रगट होता है।

ये पौधे भी श्वास ले रहे हैं और यह सागर भी श्वास ले रहा है, और ये पक्षी भी श्वास ले रहे हैं। सारा जीवन श्वास का खेल है। ऐसा समझ सकते हैं कि श्वास की अनंत लहरों का नाम जीवन है। जहां-जहां से श्वास विदा हो जाती है, वहां-वहां जीवन क्षीण हो जाता है। श्वास के ही पथ से परमात्मा भी आयेगा। श्वास के पथ से सब कुछ आया है और गया है इसलिए श्वास ध्यान के लिए बड़ी महत्वपूर्ण बात है।

लेकिन श्वास दो तरह से ली जा सकती है। एक, अनजाने, बेहोशी में, मूर्छित, जैसा हम ले रहे हैं। श्वास चल रही है चौबीस घंटे, लेकिन हमने कभी खयाल नहीं दिया श्वास पर। जो जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया है, वह बिलकुल ही अनजान, चुपचाप चल रही है। हमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया है। श्वास पर हम कभी जागे नहीं। यदि हम श्वास के प्रति जाग सकें, तो तत्काल श्वास के साथ ध्यान के आगमन का द्वार खुल जाता है। कुछ और करने की जरूरत नहीं।

अगर कोई व्यक्ति चौबीस घंटे में जब भी उसे खयाल आ जाये, श्वास के प्रति होश से भर जाये, माइंडफुल हो जाये कि यह श्वास जा रही है, यह श्वास आ रही है, यह श्वास जा रही है, तो तत्काल एक दूसरा मार्ग भीतर खुलना शुरू हो जाता है। श्वास की अवेयरनेस, श्वास को होशपूर्वक देखने से तत्काल चेतना में नये दरवाजे खुलने शुरू हो जाते हैं। श्वास मूर्छित और श्वास अमूर्छित—अगर श्वास मूर्छित ले रहे हैं आप, तो आप ध्यान के रास्ते पर प्रवेश न कर सकेंगे। होशपूर्वक ले रहे हैं, जानकर ले रहे हैं, खयाल है कि यह श्वास जा रही है, आ रही है, तो आपके भीतर दो चीजें होंगी, एक श्वास और एक आप। ये दो अलग हो गये तत्काल। अभी श्वास और आप एक हैं। अभी आइडेंटिटी है। अभी ऐसा लगता है कि मैं श्वास हूं। अगर कोई आपकी नाक दबा दे, तो आप चिल्लाकर कहोगे कि 'मुझे मारो मत! मार डालोगे क्या? छोड़ो मुझे!' कोई गर्दन दबाये, श्वास रोके, तो आप कहेंगे, 'मरा!' अभी मैं और श्वास एक हैं।

अज्ञानी और ज्ञानी में एक ही फर्क है, जिसकी 'मैं' और 'श्वास' एक है, वह अज्ञानी है। और जिसकी

'मैं' और 'श्वास' भिन्न हो गये, वह ज्ञानी है। जिसे यह साफ दिखायी पड़ गया कि मैं अलग और श्वास अलग, उसके बाद उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। जब तक उसने समझा कि मैं श्वास हूं, तब तक मृत्यु होगी, क्योंकि कल श्वास टूटेगी। जिस दिन उसने जाना कि मैं श्वास के पीछे हूं, अलग हूं, भिन्न हूं, उस दिन के बाद मृत्यु असंभव हो गयी। श्वास टूटेगी, फिर भी वह जानेगा, 'मैं हूं'। श्वास बंद हो जायेगी, फिर भी वह जानेगा कि 'मैं हूं'।

इसलिए श्वास पर पहला सूत्र है कि हम श्वास को देखते हुए कैसे ले सकें, होश से कैसे ले सकें। श्वास को कैसे देख सकें, जान सकें, पहचान सकें। और हमारे भीतर जो क्रिया हो रही है, वह श्वास की ही क्रिया हो रही है। हमारा पूरा शरीर श्वास की क्रिया को करने के लिए इंतजाम है, सिचुएशन है। यह सारा इंतजाम—यह खून का दौड़ना, यह हड्डियों का होना, इस हृदय की धड़कन—यह सारा का सारा यंत्र एक काम के लिए है। इसके केंद्र पर श्वास है। श्वास लेने के लिए सारी की सारी व्यवस्था है। यह पूरा शरीर श्वास लेने का यंत्र है। तो जैसे ही हम श्वास से अलग हुए, हम शरीर से भी अलग हो गये। तत्काल पता चलेगा कि मैं शरीर नहीं हूं। और जिसे यह अनुभव होने लगा कि 'मैं शरीर नहीं हूं', उसे अनुभव होने लगेगा कि 'मैं कौन हूं'।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या श्वास गहरी और तीव्र दोनों एक साथ होनी चाहिए?

दोनों एक साथ हों, तो ज्यादा परिणाम होगा। गहरी भी हो और तीव्रता से भी हो, गहरी भी हो और तेजी से भी हो।

चाहता मैं यह हूं कि श्वास पर ही सारी शक्ति लग जाए, ताकि मन को करने को और कोई काम शेष न रह जाए। थोड़ा भी मन बाकी न रह जाये, सारा श्वास पर लग जाए। जो थोड़ा-बहुत बाकी रह ही जाता है, इसीलिए बाद में 'मैं कौन हूं', इस पर उसे भी लगा देना है।

दो-तीन मित्रों ने पूछा है कि जब 'मैं कौन हूं' तीव्रता से पूछते हैं, तो श्वास की तीव्रता पहले जैसी नहीं रह जाती।

नहीं रह जाएगी, क्योंकि शक्ति फिर 'मैं कौन हूं' के पूछने में चली जाती है। इसकी चिंता न करें। शक्ति पूरी लग जाये—चाहे वह श्वास पर लग जाये, चाहे 'मैं कौन हूं' पर लग जाये—ऐसा हो जाये कि आपके भीतर करने के लिए और कोई शक्ति पीछे शेष नहीं रह गई। रिमेनिंग कुछ भी न रह जाये, पूरी आपकी तरफ से लग जाए और परिणाम आ जाएगा।

दो तीन मित्रों ने पूछा है: कुण्डलिनी क्या है?

वह तो बड़ी बात है। अगली बार संभव हुआ तो दो-चार दिन उस पर ही बात करनी पड़ेगी। बहुत संक्षिप्त में इतना समझें कि मनुष्य के शरीर के भीतर अदभुत शक्तियों का निवास है, लेकिन सोयी हुई हैं बहुत-सी शक्तियां—कुण्डलिनी उस शक्ति को कह रहे हैं, जो मनुष्य के पहले केंद्र से उठकर अंतिम केंद्र की तरफ यात्रा करती है। वह आपकी रीढ़ से होकर गुजरेगी, मस्तिष्क के ऊपर तक जाएगी। जैसे कोई विद्युत की धारा भीतर बहती हो और ऊपर उठती हो या जैसे कोई सांप सोया हो और फन उठाता हो, बहुत तरह का अनुभव हो सकता है। जब वैसा अनुभव हो रहा हो, तब भयभीत होने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जहां

भयभीत हो गए, वहीं अनुभव रुक जाएगा। जब वैसा अनुभव हो रहा हो, तब अत्यंत प्रफुल्लता से, अत्यंत रिसेप्टिविटी से, निमंत्रण से, इनवाइटिंगली उस अनुभव को स्वीकार कर लें, ताकि वह पूरा हो सके।

बहुत से मित्रों ने पूछा है कि पूरे शरीर में विद्युत की धाराएं दौड़ती हुई मालूम पड़ती हैं?

मालूम पड़ेंगी। उन विद्युत की बहती हुई धाराओं को पूरी तरह से स्वीकार कर लें और जब वे तेजी से दौड़ें, तो रोकने की कोशिश मत करें। वे विद्युत की धाराएं शरीर को सब तरफ से शुद्ध कर जायेंगी, मन को शुद्ध कर जायेंगी। लेकिन अगर उनको रोका, तो नुकसान हो सकता है। इसलिए निरंतर मैं कहता हूं कि जरा भी रोकें न, सब छोड़ दें। एक ओपनिंग रह जायें आप। जो भी हो रहा है—होने दें।

बहुत से मित्रों के मुंह से जोर से चिल्लाहट निकल गई। निकल जायेगी और भी ज्यादा। कुछ तो रोक लेते हैं। तो किन्हीं ने पूछा है कि वह रोकें या न रोकें?

निरंतर मैं कह रहा हूं, कुछ भी न रोकें।

पूछा है क्यों आवाज मुंह से निकल जाती है? रोना निकल जाता है, क्यों हंसना आ जाता है इतनी तीव्रता से, ऐसा लगता है कि कहीं हम अपने होश से बाहर तो नहीं हैं?

हमने अपने मन के साथ बहुत दुर्व्यवहार किए हैं। कभी रोना चाहा है जोर से, तो उसे भी रोक लिया है, वह अटका रह गया है। कभी हंसना चाहा है जोर से, उसे भी रोक लिया है वह भी अटका रह गया है। कभी चिल्लाना चाहा है, वह भी नहीं चिल्ला पाये हैं, वह भी अटका रह गया है। सभ्यता ने आदमी को अधूरा कर दिया है सब तरफ से। न पूरा हंसता, न पूरा रोता, न पूरा जीता; न पूरा प्रेम करता; न पूरा क्रोध करता, न मित्रता करता है पूरी, न लड़ सकता है पूरी तरह। सब तरफ अधूरा-अधूरा है। वह सब अटका रह गया है।

ध्यान की गहराई तभी उपलब्ध होगी, जब वह सब अटका हुआ बिखरकर बह जाए। उसे रोकोगे तो ध्यान की गहराई में जाना असंभव है। इसलिए रोको मत। चिल्लाने की स्थिति हो गई है भीतर और फूट रहा है पूरा प्राण चिल्लाने को, तो चिल्ला लेने दें। थोड़ी देर में वे आवाजें निकल जायेंगी और भीतर आप हल्के हो जाएंगे। वर्षों का माल निकल सकता है। लेकिन उसे रोकेंगे, तो वहीं अटक जायेंगे।

और यहां हम इसकी चिंता ही न करें कि कौन क्या सोचेगा! यह 'कौन क्या सोचेगा', यही हमारी मृत्यु बन गई है। चौबीस घंटे हम ऐसे डरे हुए जी रहे हैं कि कौन क्या सोचेगा। जीना हमें है, सोचना दूसरों को है! उनके सोचने की विधि से हम जी ही नहीं पाते। अकेले हैं आप, किसी के सोचने का कोई मूल्य नहीं है। जीना है आपको, होना है आपको। तो बिलकुल छोड़ दें।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि ऐसा लगता है कि किसी पशु की आवाज है, हमारी आवाज नहीं है!

कल एक मित्र करीब-करीब ऐसी हालत में थे जैसे कि कोई दहाड़ने के पहले सिंह हों। लेकिन उन्होंने बहुत सम्हाल लिया अपने को। वे दहाड़ लेते तो बहुत शुभ होता। क्या कारण है कि पशु की आवाज हमारे भीतर है? इसके कारण तो लंबे हैं, लेकिन एक संक्षिप्त बात आपसे कह दूं। हम सब किसी न किसी पशु योनियों से यात्रा करके मनुष्य तक आ सके हैं। अगर आपके भीतर किसी पशु की आवाज बहुत जोर से निकलने लगे, तो वह बहुत सिम्बालिक है। वह इस बात की खबर है कि आप किस योनि से यात्रा करके मनुष्य तक आ रहे हैं। वह आपकी पिछली योनि की खबर देती है। उसे निकल जाने दें, उसकी कोई चिंता न

लें।

किसी के शरीर में इतने जोर से शक्ति का आविर्भाव होगा कि नाचने लगे, खड़ा हो जाये, चिल्लाने लगे। दूसरे की चिंता नहीं करनी है, आप अगर आंख खोलकर भी देख लें, तो आप भटक जाते हैं। आप गए। आपका काम बंद हो गया। किसको क्या हो रहा है, वह उसे होने दें। आपको जो हो रहा है, वह आप होने दें। रोकें न। अगर खड़े होने की शरीर की स्थिति हो, तो खड़े हो जायें, क्योंकि खड़े होने की स्थिति का मतलब ही यह है कि भीतर कोई धारा उठना चाहती है, जो बैठे में नहीं पूरी तरह उठ पायेगी, इसलिए शरीर खड़ा हो रहा है।

किसी के हाथ मुद्रा बना रहे हैं, किसी का सिर घूम रहा है, कोई चक्कर खा रहा है, कोई गिर पड़ा है, कोई मछली की तरह तड़प रहा है, किसी का एक पैर ही कंप रहा है, किसी का एक हाथ ही ऊंचा-नीचा उठ रहा है, वह जो भी हो रहा है, आप छोड़ दें। शक्ति भीतर काम कर रही है, उसे काम करने दें। वह शक्ति आपको पहले से अदभुत नई स्थितियों में छोड़ जाएगी। कोई बीस-पच्चीस मित्र उस जगह आ गए हैं, जहां एक नया अनुभव भी हो सकता है। उसकी मैं आज बात कर लूं, संभव है वह आज हो सके।

जब आप पूरी तीव्रता में, टोटल इनटेंसिटी में, जब आप समग्रता से समर्पण करते हैं, जब आप पूरी तरह से अपने को छोड़ते हैं और जब आपके भीतर जो भी होता है आप होने देते हैं, रोकने वाले नहीं बनते, जब यह ठीक चरम स्थिति में पहुंचे, तो आपके भीतर कोई बड़ी शक्ति ऊपर से उतर गई हो, जैसे कोई नदी किसी सागर में गिरे, जैसे कोई विद्युत की धारा ऊपर से आपके ऊपर आ जाए और आप में प्रवेश कर जाए—वैसा अनुभव भी शुरू होगा। जब वैसा अनुभव होगा, तब आप बिलकुल ही मुश्किल में पड़ जायेंगे, क्योंकि उतनी बड़ी शक्ति का आवर्तन, उतरना, अवतरण कभी भी आपके खयाल में नहीं है। जब वह आयेगी, तब आप बिलकुल ही यंत्रवत घूमने लगेंगे। गिरेंगे, लौटेंगे, चिल्ला सकते हैं, नाच सकते हैं, कुछ भी हो सकता है। कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। अपनी तरफ से आप चरम स्थिति में पहुंच जायें तो बड़ी शक्ति ऊपर से संबंधित हो सकती है। लेकिन अपनी तरफ से जब तक आप पूरे न पहुंच जायें, तब तक यह नहीं होगा। वह कांटैक्ट, वह संपर्क आपकी चरम स्थिति में ही हो पाएगा। इसलिए आज हम फिर कोशिश करें पूरी ताकत से। इन चार दिनों में काफी गति हुई है।

और ध्यान रहे, एक भी आदमी दर्शक की भांति न बैठा रहे, क्योंकि वह पूरे एटमॉसफियर को नुकसान पहुंचा सकता है। वह आदमी जिस जगह बैठा है, उस जगह सब तरफ जो विद्युत की धारायें फैलने लगती हैं, उन्हें उस आदमी की वजह से निरंतर बाधा पड़ती हैः वह नान-कंडक्टर की तरह बीच में बैठ जाता है। किसी को देखना भी हो, तो वह बीच से एकदम हट जाए। वह कहीं भी किनारे, दूर दीवालों पर बैठ जाए; बीच में यहां न बैठा हो। और देखने का कोई मूल्य भी नहीं है। देखने से कुछ होने वाला भी नहीं है।

आज मैं आशा करता हूं, हम पूरी शक्ति लगायेंगे। हमने कोशिश की है लेकिन फिर भी बहुत शक्ति बाकी रह जाती है। कल मैंने कहा था, मैं ध्यान के पहले कुछ लोगों को जाकर स्पर्श करूंगा, वे ही दोपहर मिलने आ सकेंगे। लेकिन उसमें कम से कम घंटा भर लग जाएगा। इसलिए वह संभव नहीं है और मैं जिस वजह से स्पर्श करना चाहता था, वह आपको भी कह देता हूं, आप खुद ही खयाल कर लेंगे।

मैं उन लोगों को स्पर्श करना चाहता था, जिनके भीतर बहुत तीव्रता से शक्ति जग रही है, लेकिन जो कहीं छोटी-मोटी बाधा डाल रहे हैं। तो जिनको भी ऐसा लगता हो कि कुछ हो रहा है, लेकिन मैं बाधा डाल रहा हूं, वे लोग दोपहर मिलने को आ जायें। और फिर जो मुझे करना था आपको स्पर्श करके, वह नारगोल के शिविर में संभव हो सकेगा, क्योंकि चार दिन हम साथ होंगे, ज्यादा समय होगा। और जिन मित्रों को भी खयाल हो और गहरे जाने का, वे नारगोल जरूर ही आ जायें। इस बार बहुत पूर्व लक्षण है कि वहां बहुत कुछ हो सकेगा।

अब हम ध्यान के लिए बैठें। तो पहले तो देख लें कि कोई किसी को स्पर्श न करे और एक दूसरे से दूर हो जायें। जिनको लेटना है या जिन्हें पता है कि बीच में वे गिर जायेंगे, वे पहले से लेट जायें, ताकि उनके लिए जगह बन जाये। चुपचाप।

एक संकल्प लेकर बैठें कि आज अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे। दूसरी प्रार्थना लेकर बैठें कि अपनी पूरी शक्ति लग जाये, तो परमात्मा की शक्ति भी उतर सके।

शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। बीच में भी लेटने का मन हो, तत्काल लेट जायें। इसकी बिलकुल फिक्र मत करें कि किसी के पैर पर भी सिर पड़ जायेगा। पड़ जाये तो चिंता नहीं है। गिरते हों, गिर जायें, रोकें भर नहीं। और आज पूरी ताकत लगानी है।

आंख बंद कर लें, श्वास गहरी लेना शुरू करें। श्वास लें, जितनी गहरी ले सकते हों। जितनी गहरी छोड़ें, उतनी ही गहरी लें। गहरी श्वास लेना शुरू कर दें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें—गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें। पूरी शक्ति से गहरी श्वास लेना शुरू करें। श्वास ही लेना है, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास भीतर जाये, गहरी श्वास बाहर जाये। गहरी श्वास भीतर जाये, गहरी श्वास बाहर जाये। श्वास भीतर—श्वास बाहर। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास....।

और श्वास को भीतर देखते रहें। श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी, इसके साक्षी बने रहें। इसके द्र ष्टा बने रहें। श्वास भीतर जा रही, हम देख रहे हैं। श्वास बाहर जा रही, हम देख रहे हैं। देखते रहें और गहरी श्वास लेते रहें। दो काम। दस मिनट के लिए पूरी शक्ति से करें। गहरी श्वास लें—गहरी श्वास लें। पूरा शरीर कंप जाये। फिक्र न करें, और गहरी श्वास लें।

सारे शरीर में विद्युत की तरंगें दौड़ने लगेंगी। गहरी श्वास लें और गहरी श्वास छोड़ें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें और देखने वाले बने रहें भीतर—यह श्वास भीतर गयी—यह श्वास बाहर गयी। देखते रहें—देखते रहें—देखते रहें। गहरी श्वास—देखते रहें...।

दस मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। आप गहरी श्वास लें और देखते रहें। और पूरी शक्ति लगा दें। दांव पर सब लगा दें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। यह पूरा वातावरण, सिर्फ श्वास लेने लगे, छोड़ने लगे। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—और देखते रहेंः श्वास भीतर गयी, श्वास बाहर गयी। गहरी श्वास...। यह पूरा वातावरण बस श्वास लेने और छोड़ने लगे। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—शक्ति पूरी लगा दें, शरीर बिलकुल थक जाये—शक्ति पूरी लगा दें। गहरी श्वास—गहरी

श्वास—गहरी श्वास—और मन बिलकुल शांत होने लगेगा। गहरी श्वास—देखते रहें—देखते रहें—मन शांत होता चला जाये।

गहरी श्वास लें—गहरी श्वास लें—गहरी श्वास लें। बस श्वास लेने का एक यंत्र रह जाये सारा शरीर और भीतर देखते रहें। यह श्वास भीतर गयी, यह श्वास बाहर गयी। श्वास भीतर गयी। श्वास बाहर गयी।

शक्ति पूरी लगा दें—शुरू से ही पूरी लगा दें, ताकि अंत तक पहुंचते-पहुंचते वह चरम बिंदु आ जाये, जिसे चाहता हूं कि आये। छोड़ें—पूरी ताकत लगायें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। देखते रहें—गहरी श्वास—गहरी श्वास।

अपने को थका डालें और दूसरे की चिंता न करें। यह बीच में कोई भी आंख खोल-खोलकर न देखे। अपनी फिक्र करें। गहरी श्वास—पूरी शक्ति लगा दें, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। गहरी श्वास—गहरी श्वास—और गहरी—और गहरी—और गहरी।

पूरी शक्ति दांव पर लगा दें। और गहरी—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास।...देखते रहें, बस श्वास लेने की एक धौंकनी हो जायें। श्वास, श्वास, श्वास ही रह जाये, और सब मिट जाये। श्वास ही रह जाये, और सब मिट जाये।

गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। पूरी शक्ति लगायें—पूरी शक्ति लगायें। गहरी श्वास—और गहरी—और गहरी—और गहरी। दांव पर सब लगा दें। और गहरी—और गहरी—पीछे कुछ बाकी न बचे। और गहरी—और गहरी—और गहरी—और गहरी...।

और गहरी—दूसरे सूत्र में प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगायें। एक दो मिनट के लिए अब पूरी शक्ति लगायें, ताकि दूसरे सूत्र में प्रवेश हो सके। पूरी शक्ति पर ही दूसरे में प्रवेश करना है। और गहरी—और गहरी—देखते रहें: गहरी श्वास भीतर गयी—श्वास बाहर गयी। श्वास भीतर गयी—श्वास बाहर गयी। लगायें पूरी शक्ति। और गहरा—और गहरा—और गहरा—और गहरा—और गहरा। और गहरा—और गहरा—और गहरा। और लगायें, और गहरी ताकत लगायें—एक मिनट के लिए पूरी शक्ति लगायें। दूसरे सूत्र में प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगायें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास...।

मैं दूसरे की सूचना दूं, तैयारी करें—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास, और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी श्वास—और गहरी। श्वास ही रह जाये—सिर्फ श्वास ही रह जाये—श्वास ही रह जाये—श्वास ही रह जाये—सिर्फ श्वास ही रह गयी, देखने वाले रह गये हैं—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास।

अब दूसरे सूत्र में प्रवेश कर जायें—गहरी श्वास लेते रहें, गहरी श्वास लेते रहें और शरीर को बिलकुल छोड़ दें। शरीर को छोड़ दें। शरीर को बिलकुल छोड़ दें। शरीर को जो हो—हो। शरीर घूमे, चक्कर खाये, गिरे, चिल्लाये, रोये, चिंता छोड़ दें। शरीर को ढीला छोड़ दें। गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होना है, होने दें। शरीर को बिलकुल छोड़ दें, ताकि साफ

दिखायी पड़े कि शरीर अलग है। शरीर अलग यंत्र की भांति घूमने लगे, गिरने लगे, वह शरीर को जैसा चलाये, कोआपरेट करें। हाथ हिलते हों, पैर हिलते हों, सिर घूमता हो, शरीर गिरता हो, आवाज निकलती हो, चिल्लाहट आती हो, रोना आता हो, मुद्रा बदलती हो। छोड़ दें बिलकुल। दूसरा सूत्र हैः शरीर को छोड़ दें।

श्वास गहरी जारी रहे, शरीर को छोड़ दें। शरीर इतना थक जाये, जितना थक सके—छोड़ दें बिलकुल और दस मिनट के लिए शरीर में होने दें जो होता है। श्वास गहरी जारी रखें, श्वास गहरी रहे, श्वास गहरी रहे। शरीर को छोड़ दें—बिलकुल छोड़ दें—जरा भी रोकें न। संकोच न करें—छोड़ दें शरीर को, जैसा होना है, होने दें।

शरीर के भीतर शक्ति जो करती है, उसे करने दें। जो भी होता है, होने दें। न मालूम कितनी बीमारियां समाप्त हो जायेंगी। शरीर को बिलकुल छोड़ दें। न मालूम कितने दबे वेग सदा के लिए निकल जायेंगे। शरीर को बिलकुल छोड़ दें।शरीर को बिलकुल छोड़ दें—जो भी होता है होने दें। श्वास गहरी जारी रहे—और भीतर श्वास को देखते रहें—और शरीर को छोड़ दें। जो भी होता है, जो भी होता है—होने दें। शरीर को ढीला छोड़ दें।

शरीर घूमता है—घूमने दें। हाथ पैर कंपते हैं, हिलते हैं—हिलने दें। सारा शरीर एक यंत्र की भांति चक्कर खाता है, खाने दें; गिरता है गिरने दें। खड़ा हो जाये शरीर, खड़ा हो जाने दें। आवाज निकले, निकल जाने दें। चिल्लाहट निकले, निकल जाने दें। रोना निकले, निकल जाने दें।....छोड़ दें....छोड़ दें।

बढ़ाते जायें श्वास, बढ़ाते जायें—शरीर को छोड़ते जायें—बढ़ाते जायें। श्वास को गहरा लेते जायें और शरीर को छोड़ें। छोड़ दें, शरीर को बिलकुल छोड़ दें। श्वास गहरी—श्वास गहरी—श्वास गहरी। रोकें न जरा भी। कुछ भी न रोकें। जो होता है, होने दें। श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी। श्वास गहरी—श्वास गहरी—श्वास गहरी—श्वास गहरी। और बिलकुल छोड़ दें।

पांच मिनट बचते हैं। पांच मिनट में पूरे शरीर को जो होना है, होने दें—छोड़ दें। शरीर जो होता है होने दें, ताकि साफ दिखायी पड़े कि शरीर अलग—मैं अलग। शरीर को छोड़ दें। रोता है, रोये। हंसता है, हंसे। चिल्लाता है, चिल्लाये। नाचता है, नाचे। जो होता है होने दें। छोड़ दें, बिलकुल छोड़ दें। भीतर कोई पकड़, कोई रेसिस्टेंस न रहे। जरा भी रोकें नहीं। गहरी श्वास जारी रहे—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास।

छोड़ दें...छोड़ दें। शरीर को करने दें, आप न रोकें, संकोच न करें, नियंत्रण न करें। आप श्वास गहरी जारी रखें और शरीर को छोड़ दें। शक्ति भीतर जो करे, होने दें। छोड़ दें। शक्ति जो करवाये होने दें। चेहरे की मुद्रा बदले, बदलने दें। आवाज निकले, निकलने दें। कोई पशु भीतर से चिल्लाने लगे, चिल्लाने दें। जो भी होता है, होने दें। गहरी श्वास—गहरी श्वास। पूरी शक्ति लगा दें—पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास—गहरी श्वास। थका ही डालना है सारे यंत्र को। कंजूसी न करें। बिलकुल ही थका डालें—छोड़ दें।

तो गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास लें। पूरी ताकत लगायें। दो ही मिनट हैं तीसरे सूत्र में जाने के लिए, पूरी ताकत लगायें। गहरी श्वास लें और शरीर को बिलकुल छोड़ दें। गहरी श्वास लें, शरीर को बिलकुल छोड़ दें। जो होता है,

होने दें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—छोड़ दें शरीर को बिलकुल।

आखिरी मिनट है। तीसरे सूत्र के पहले शरीर को जो करना है करने दें। रोना है, चिल्लाना है, गिरना है, हिलना है, डुलना है...छोड़ दें। पूरी ताकत से छोड़ें—गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास...शरीर को छोड़ दें। छोड़ दें—रोकें नहीं, छोड़ दें—छोड़ दें। पूरा वातावरण—एक साथ रोने-चिल्लाने लगे। छोड़ दें, सब छोड़ दें। आखिरी मिनट है, तीसरे सूत्र में जाने के पहले पूरी शक्ति लगायें। गहरी श्वास—गहरी श्वास—और गहरी—और गहरी—और गहरी—और गहरी और शरीर को छोड़ें आखिरी बार। बिलकुल छोड़ दें। जो भी होता है, होने दें।

पूरी ताकत लगायें, पूरी ताकत लगायें, पूरी ताकत लगायें—तीसरे सूत्र में जाने के पहले पूरी ताकत लगायें—पूरी ताकत लगायें। और तीव्रता—और तीव्रता—और तीव्रता—और तीव्रता। पूरी ताकत लगा दें। पूरी ताकत—पूरी ताकत। जरा भी रोकें न। पीछे कुछ बचे भी न—बिलकुल छोड़ दें। पीछे कहने को न रहे कि मैंने कुछ रोक लिया। छोड़ें—छोड़ दें। एक मिनट के लिए बिलकुल छोड़ दें। जो होता है, होने दें। जो होता है, होने दें। छोड़ें—छोड़ें—छोड़ें—तीसरे सूत्र में जाने के लिए छोड़ें—बिलकुल छोड़ दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास। और गहरी—और गहरी—और गहरी—और गहरी...।

और तीसरे सूत्र में प्रवेश करें। श्वास गहरी रहेगी, शरीर को जो करना है, करता रहेगा। आप भीतर ताकत से पूछना शुरू करें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। भीतर अपने मन में जोर से पूछें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। शरीर को हिलने दें, श्वास को गहरा चलने दें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...। पूरे प्राण पूछने लगें—मैं कौन हूं—मैं कौन—हूं—मैं कौन हूं। शरीर का रोआं-रोआं पूछने लगे—हृदय की धड़कन-धड़कन पूछने लगे—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। पूरी ताकत भीतर लगायें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—दस मिनट के लिए पूरी शक्ति लगा दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

पूरी शक्ति लगायें भीतर—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—एक तूफान उठ जाये। दस मिनट के बाद फिर विश्राम करेंगे। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—सारे प्राण कंप जायें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...। दो 'मैं कौन हूं' के बीच जगह न बचे—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं पूरी शक्ति लगा दें। अपने को तूफान में डाल दें, तभी हम ध्यान में जा सकेंगे। जो जितनी तीव्रता से पूछेगा, उतने ही गहरे ध्यान में जा सकेगा। जो जितनी तीव्रता से पूछेगा उतने ही गहरे ध्यान में जा सकेगा। चौथा सूत्र ध्यान का होगा। अपनी ताकत पूरी लगायें कि मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...।

पूरी शक्ति लगायें। आखिरी विश्राम से पहले शक्ति पूरी लगा दें, ताकि विश्राम गहरा हो सके। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। शरीर घूमता रहे, शरीर को घूमने दें। शरीर में शक्ति को पूरा घूमने दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। पूरी शक्ति से घूमने दें—मैं कौन हूं—मैं कौन

हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

पांच मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगायें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। इस पांच मिनट के लिए पूरी शक्ति लगा दें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...। गहरी श्वास...थका डालें अपने को। गहरी श्वास—गहरी श्वास, शरीर को जो होता है, होने दें। शरीर को पूरा छोड़ दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। गहरी श्वास—गहरी श्वास—गहरी श्वास—शक्ति पूरी लगायें, ताकि ऊपर की शक्ति से संबंध हो सके। जैसे ही संबंध होगा, शरीर एकदम नाचने लगे, तो फिक्र न करें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

शक्ति पूरी लगायें। सिर्फ तीन मिनट बचे हैं, पूरी शक्ति लगा दें। पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास। और गहरी—और गहरी—और भीतर पूछें तूफान की तरह—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

चौथे सूत्र में जाने के पहले शक्ति पूरी लगा दें कि मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—पूरी ताकत लगायें। अपनी शक्ति को पूरा लगा दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—शक्ति पूरी लगायें और ऊपर से शक्ति आती मालूम पड़े, तो जो भी शरीर को हो, होने दें। नाचने लगें, फिक्र न करें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

एक दो मिनट और बचते हैं, पूरी शक्ति लगायें फिर विश्राम करना है। विश्राम उतना ही गहरा होगा, जितनी शक्ति हम लगायेंगे। अपने को पागल कर दें, पूरी ताकत लगा दें। अपने को पागल कर दें, पूरी ताकत लगा दें। और इस बीच ऊपर से किसी को भी शक्ति आती मालूम पड़े, तो अपने को छोड़ दें। जो भी हो, हो। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—बिलकुल पागल हो जायें। छोड़ दें अपने को। मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, मैं कौन हूं।

चौथे सूत्र में प्रवेश का क्षण करीब आता है। जोर लगायें—मैं कौन हूं—छोड़ दें—और शक्ति ऊपर से उतरे, तो फिक्र न करें। ऐसा लगे और नाच आ जाये, तो नाचें; घबड़ायें न। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—पूरी ताकत लगायें—गहरी श्वास—अवसर को चूकें न। पूरी ताकत लगायें।

एक ही मिनट की बात है—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...तूफान पूरा उठा दें...मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। बढ़ें—तीव्रता से बढ़ें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। थका दें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं...।

किसी का भी शरीर खड़ा होना चाहे, रोकें नहीं, छोड़ दें—छोड़ दें। शरीर खड़ा होता हो, हो जाने दें। छोड़ दें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—रोकें नहीं। किसी का भी शरीर खड़ा होता हो, हो जाने दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—शरीर खड़ा होता है—रोकें मत—छोड़ दें,

खड़े हो जायें। नाचता है, नाच लें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—छोड़ दें। जिनका भी शरीर खड़ा हो रहा है, उठ जाने दें—छोड़ दें—खड़े हो जायें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—एक सेकेंड और। छोड़ दें बिलकुल। शरीर खड़ा होता है, हो जाने दें—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। छोड़ दें। जिनके शरीर भी खड़े होना चाहते हैं, छोड़ दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—रोकें नहीं, छोड़ दें...मैं कौन हूं—मैं कौन हूं। पूरी ताकत लगा दें। मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं—मैं कौन हूं।

अब सब छोड़ दें—सब छोड़ दें। श्वास की गहराई भी छोड़ दें, पूछना भी छोड़ दें। चौथे सूत्र में प्रवेश कर जायें।

मैं कौन हूं, यह भी छोड़ दें। जहां जो जैसा है, वैसा ही रह जाये। बैठना हो, बैठ जायें, लेटना हो, लेट जायें। सब छोड़ दें। अब दस मिनट के लिए परम विश्राम में चले जायें। द्वार खुला है, प्रभु को आना हो आ जाये। अब दस मिनट कुछ भी न करें। रह जायें। बस मात्र रह जायें। पक्षी बोलेंगे, सुनते रहें। सागर की लहरें चिल्लायेंगी, सुनते रहें। रास्ते पर आवाज होगी, सुनते रहें। बस, पड़े रह जायें प्रतीक्षा में—जस्ट अवेटिंग। द्वार खोल दिया—मेहमान आना हो आ जाये। द्वार खोल दें। द्वार पर प्रतीक्षा में बैठ जायें। कुछ करना नहीं है, दस मिनट बस पड़े रह जाना है।

इस दस मिनट में ही ध्यान की झलक आयेगी। दस मिनट में ही उसका पता चल सकता है, जो है। अब मैं चुप हो जाता हूं। दस मिनट रह गये हैं, कुछ करना नहीं है।

(दस मिनट का परम विश्राम)

अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। जिनकी आंख न खुले, वे दोनों हाथ आंख पर रख लें। फिर आहिस्ता से आंख खोलें। जो लेट गये हैं, गिर गये हैं, वे धीरे-धीरे उठ आयें। उठते न बने तो पहले दो चार गहरी श्वास लें, फिर उठें। फिर भी उठते न बने, तो लेटे रहें और गहरी श्वास लेते रहें। लेकिन उठने में कोई जल्दी न करें। आहिस्ता उठें। जो खड़े हैं, वे धीरे-धीरे आंख खोलें। थोड़ी गहरी श्वास लें। फिर आहिस्ता से बैठें। एकदम से न बैठें। धीरे-धीरे आंख खोलें। गहरी श्वास लें, फिर आहिस्ता से बैठ जायें।

इस प्रयोग को रोज रात्रि में करते रहें। प्रयोग करें और सो जायें, ताकि रात्रि की पूरी नींद में प्रयोग का परिणाम गूंजता रहे।

इन पांच दिनों में बहुत सा काम हुआ। कुछ मित्र बहुत ही निकट पहुंचे। कुछ का उस विराट शक्ति से संपर्क भी हुआ। कुछ कदम दो कदम, सीढ़ी दो सीढ़ी पहले रुक गये। लेकिन सभी की गति हुई है। और मैं चाहूंगा कि नारगोल आ जायें, ताकि उन चार दिनों में सच में ही सबकी छलांग लग जाये। नारगोल बहुत कुछ होने की संभावना है, इसलिए अवसर को मत चूकें। और जो भी, किसी भी भांति आ सके, आ ही जाये।

हमारी आज की बैठक पूरी हुई। जो लोग दोपहर, जिन्हें लगता हो कि कहीं शक्ति का उठाव रुक गया या ऊपर से किसी शक्ति का प्रवेश हुआ, लेकिन कहीं रुक गया—जिन्हें कहीं भी कोई कठिनाई, अड़चन मालूम पड़ती हो,वे दोपहर तीन से चार मिलने आ जायें। लेकिन बौद्धिक जिज्ञासाओं को लेकर नहीं, जिनकी

व्यक्तिगत साधना से ही कोई सवाल उठा हो, केवल वे ही दोपहर आयें। हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

बंबई; दिनांक 15 अप्रैल, 1970

छठवां प्रवचन

ध्यान हैः भगवत्ता

प्रश्नः आजकल अनेक संत लोग चमत्कार बताते हैं, उसके संबंध में आपका क्या मंतव्य है?

आदमी बहुत कमजोर है और बहुत तरह की तकलीफों में है। उसकी तकलीफें बिलकुल सांसारिक हैं। अभी एक, और सामान्य आदमी ही नहीं—सुशिक्षित, जिनको हम विशेष कहें वे भी...। अभी एक चार-छह दिन पहले कलकत्ते से एक डाक्टर का पत्र मुझे आया। वह डाक्टर है। तबादला करवाना है, कलकत्ते से बनारस। पत्नी-बच्चे बनारस में हैं। तो मुझे लिखता है कि मैं सब तरह की पूजा-पाठ करवा चुका हूं। साधु-संतों के सब तरह के दर्शन कर चुका हूं, सैकड़ों रुपए भी खर्च कर चुका इस पर, लेकिन अभी तक मेरा तबादला नहीं हो पाया। तब आखिरी आपकी शरण आता हूं। तबादला करवा दें, नहीं तो मेरा भगवान से भरोसा ही उठ जाएगा।

इधर मैं देखता हूं, सौ में निन्यानबे आदमियों की तकलीफें ऐसी हैं। और जितना गरीब मुल्क होगा, उतनी ही तकलीफें ज्यादा होंगी। किसी को नौकरी नहीं, किसी को बच्चा नहीं, किसी को बीमारी है, किसी को कोई तकलीफ है। हजार तरह की तकलीफें हैं! यह जो तकलीफों से भरा हुआ आदमी है, यह चमत्कार की तलाश करता है। अगर कोई चमत्कार कर रहा है, तो इसे एक आशा बनती है। और तो सब आशा छूट गई। और यह सब उपाय कर चुका है, कुछ होता दिखाई इसे पड़ता नहीं। लेकिन अगर यह देख ले कि कोई आदमी हवा में से भभूत दे रहा है, तो फिर इसे भरोसा आता है कि अभी भी कुछ आशा है। मुझे भी लड़का मिल सकता है। जब हवा से भभूत आ सकती है। तो साधु के चमत्कार से बच्चा भी आ सकता है। और अगर हाथ से सोना आ जाता है और घड़ियां आ जाती हैं, तो फिर क्या दिक्कत कि मेरा तबादला न हो और मुझे नौकरी न मिल जाए!

गरीब समाज है, दुखी-पीड़ित समाज है और जब तक लोग दुखी हैं, तब तक कोई न कोई चमत्कार से शोषण करेगा। सिर्फ ठीक संपन्न समाज हो, तो चमत्कार का असर कम हो जाएगा। जितनी तकलीफें होंगी, उतना चमत्कार का परिणाम होगा। फिर चमत्कार क्या है? एक तरफ तो ये दुखी-पीड़ित लोग हैं, जिनका शोषण किया जा सकता है आसानी से। ये हाथ फैलाए खड़े हैं कि इनका शोषण करो! और इनका शोषण एक ही तरह से किया जा सकता है कि इनकी वासनाओं की तृप्ति की कोई आशा बंधे। तो वह आशा कैसे बंधे!

अगर कोई बुद्ध, महावीर हो, तो वह तो आशा बंधाता नहीं। वह तो उल्टे इस आदमी को कहता है कि तुम्हारे दुखों का कारण तुम्हीं हो। तो तुम दुख के बाहर कैसे जाओगे, उसका मैं रास्ता बता सकता हूं। लेकिन

जिन कारणों से तुम दुखी हो, उनकी पूर्ति करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। लेकिन बुद्ध, महावीर के प्रति ये आदमी आकर्षित नहीं होंगे। इनकी वासना ही वह नहीं है अभी। एक आदमी ताबीज निकाल देगा, उसके प्रति आकर्षित होंगे, क्योंकि वासना के लिए रास्ता मिलता है। और ताबीज निकालना ऐसा काम है कि सड़क पर मदारी कर रहा है उसको। जिसको हम दो पैसा देने को भी राजी नहीं हैं! और वही मदारी कल साधु बनकर खड़ा हो जाए, तो फिर हम उसके चरणों में सिर रखने को और सब कुछ करने को राजी हैं!

तो गरीबी है, दुख है, और मूढ़ता है। और मूढ़ता यह है कि साधु कर रहा है तो चमत्कार और गैर-साधु कर रहा है तो मदारी। और जो वे कर रहे हैं, वह बिलकुल एक चीज है। इसमें जरा भी फर्क नहीं है। बल्कि मदारी ईमानदार है और यह साधु बेईमान है। क्योंकि मदारी बेचारा कह रहा है कि यह खेल है, यही उसकी भूल है। मूढ़ों के बीच इतना साफ होना ठीक नहीं। इतना सच होना, यही उसकी गलती है। कह रहा हैः यह खेल है, इसमें हाथ की तरकीब है, ताकि आप भी चाहें तो सीख सकते हैं और कर सकते हैं। बात खत्म हो गई। तो फिर कोई रस नहीं उसमें। हमें खुद में तो कोई रस है ही नहीं। जो हम ही कर सकते हैं, उसमें कोई बात ही न रह गई।

यह मदारी बताने को तैयार है कि कैसे हो रहा है। इस मदारी की परीक्षा ली जाए इसके लिए तैयार है। वह आपका साधु न तो परीक्षा के लिए तैयार है, न किसी तरह की वैज्ञानिक शोध के लिए राजी है। लेकिन फिर कारण क्या है कि हम उसको इतना मूल्य देते हैं, मदारी को नहीं देते? क्योंकि मदारी से हमारी वासना की कोई पूर्ति की आशा नहीं बनती। ठीक है, हाथ का खेल है, बात खतम हो गई। अगर मैं हाथ के ही खेल से ताबीज निकाल रहा हूं, तो बात खतम हो गई। ठीक है अब मुझसे क्या आपको मिलेगा और! कोई हाथ के खेल से बच्चा तो पैदा नहीं हो सकता; न नौकरी मिल सकती है; न धन आ सकता हैः न मुकदमा जीता जा सकता है; कुछ नहीं हो सकता। न आपकी बीमारी दूर हो सकती है। हाथ का खेल तो हाथ का खेल है। ठीक है। मनोरंजन है। बात खत्म हो गई।

जब मैं यह दावा करता हूं कि हाथ का खेल नहीं है, यह चमत्कार है, दिव्य शक्ति है, तब आपकी आशा बंधती है। फिर आपकी आशा का शोषण होता है। तो मैं मानता हूं कि जो भी साधु चमत्कार करते हैं, उनसे ज्यादा असाधु लोग खोजना कठिन हैं। क्योंकि असाधुता और क्या होगी इससे, कि लोगों का शोषण हो। और उनकी मूढ़ता का लाभ और धोखा...! एक भी चमत्कार ऐसा नहीं है जो मदारी नहीं करते। पर अंधेपन की सीमाएं नहीं हैं!

सच तो यह है कि मदारी जो करते हैं वह आपके कोई साधु नहीं कर सकते। और जो आपके साधु करते हैं, वह दो कौड़ी का कोई भी मदारी करता है। और जो मदारी करते हैं, वह आपका कोई साधु नहीं कर सकता। फिर भी, इसके पीछे कोई कारण है, यह मैं समझा भी दूं, तो मैं यह मानता नहीं कि मेरे समझाने से कोई चमत्कार में आस्था रखने वाले में कोई फर्क पड़ने वाला है। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि यह समझाने का सवाल ही नहीं है। उसकी जो वासना है, वह तकलीफ दे रही है। उसके भीतर जो वासनाएं हैं, उसका प्रश्न है, कि वह कैसे हल हो।

अब यह जो आदमी है डाक्टर, जिसने मुझे लिखा, इसको मैं कितना ही समझाऊं, इससे कोई फर्क नहीं

पड़नेवाला। क्योंकि समझाने में कोई तबादला तो होगा ही नहीं। समझाने का एक ही परिणाम होगा कि यह मुझे हाथ जोड़कर किसी और की तलाश करे। कोई उपाय नहीं होने वाला है। क्योंकि इस आदमी को कुछ मालूम नहीं है। बात खत्म हो गई। इतना ही इसका परिणाम होगा और कोई परिणाम होने वाला नहीं। ये किसी और की तलाश करेंगे। वे चमत्कार के तलाशी हैं। और हमारे मुल्क में ज्यादा होंगे, क्योंकि बहुत दुखी मुल्क है। बहुत पीड़ित मुल्क है, अति कष्ट में है। इतने कष्ट में यह शोषण आसान है।

मगर मेरा मानना ऐसा है कि धर्म से चमत्कार का कोई लेना-देना नहीं है। क्योंकि धर्म का वस्तुतः आपकी वासना से कोई लेना-देना नहीं। धर्म तो इस बात की खोज है कि वह घड़ी कैसे आए, जब सब वासनाएं शांत हो जायें। कैसे वह क्षण आए, जब मेरे भीतर कोई चाह न रह जाए। क्योंकि तभी मैं शांत हो पाऊंगा। जब तक चाह है, तब तक अशांति रहेगी। चाह ही अशांति है।

तो धर्म की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे आपके भीतर वह भाव बन जाए, जहां कोई चाह नहीं है, कोई मांग नहीं है। उस घड़ी ही अनुभव होगा जीवन की परम धन्यता का। तो चमत्कार से क्या लेना-देना है! धर्म का कोई लेना-देना चमत्कार से नहीं है। और सब चमत्कार मदारी के लिए हैं। जो नासमझ मदारी हैं, वे बेचारे सड़कों पर करते हैं। जो समझदार हैं, चालाक हैं, होशियार हैं, बेईमान हैं, वे साधु के वेश में कर रहे हैं। और इनको तोड़ा भी नहीं जा सकता, वह भी मैं समझता हूं। इनके खिलाफ कुछ भी कहो, उससे कोई परिणाम नहीं होता। परिणाम उस आदमी पर हो सकता है, जो वासना के पीछे न हो; ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।

एक स्त्री मेरे पास आई। उसको बच्चा चाहिए। और उसको मैं समझा रहा हूं कि सब चमत्कार मदारीगिरी है? वह उदास हो गई बिलकुल। वह बोली कि सब मदारीगिरी है? उसको दुख हो रहा है मेरी बात सुनकर। मुझे खुद ही ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं पाप कर रहा हूं, जो उसको मैं समझा रहा हूं। हो बच्चा, न हो बच्चा, होने की आशा में तो वह इतनी दौड़-धूप कर रही है। तो मैंने कहा, 'तू मेरी बात की फिक्र मत कर, और तू वैसे भी नहीं करेगी। तू जा, और खोज कोई न कोई, पता नहीं कोई कर सके चमत्कार!' उसकी आंखों में ज्योति वापस लौट आई। उसने कहा,'तो आप कहते हैं कि शायद कोई कर सके।'

ये हमारे विश फुलफिलमेंट हैं। भीतर हमारी इच्छा है कि ऐसा हो। चमत्कार होने चाहिए, ऐसा हम चाहते हैं। इसलिए फिर कोई तैयार होकर बता देता है कि देखो, ये हो रहे हैं। और हम चाहते हैं कि वह इच्छा पूरी हो।

और उन चमत्कारियों से कोई भी नहीं कहता, जब तुम राख ही निकालते हो, तो क्यों राख निकालते हो! कुछ और काम की चीजें निकालो, ताकि इस मुल्क में कुछ काम आये! क्या तुम ताबीज निकाल रहे हो! निकाल ही रहे हो और चमत्कार ही दिखा रहे हो, तो फिर इस मुल्क में कुछ और, बहुत चीजों की जरूरत है। और इससे क्या फर्क पड़ता है। जब राख निकल सकती है, ताबीज निकल सकती है, घड़ी निकल सकती है, तो जब एक तरकीब तुम्हारे हाथ आ गई—तब कुछ भी निकल सकता है।

अगर एक बूंद पानी को हम भाप बना सकते हैं, फिर हम पूरे सागर को भाप बना सकते हैं, नियम की बात है। जब नियम मेरे हाथ में आ गया कि शून्य से राख बन जाती है, तब क्या दिक्कत है, कोई दिक्कत नहीं है।

ये चमत्कार दिखाने वाले इस मुल्क में दिखा रहे हैं हजारों साल से चमत्कार। और यह मुल्क रोज बीमारियों, गरीबी और दुख में ढंकता जाता है और मरता जाता है—और ये दिखाते चले जाते हैं। इनके चमत्कार की वजह से गरीबी नहीं मिटती। मेरा मानना है, गरीबी की वजह से इनके चमत्कार चलते हैं।

थोड़ी देर को सोचें, यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर अभी यहां बाहर पता चले कि सत्य साइ बाबा मौजूद हैं, तो आपके मन में पहला खयाल क्या आएगा। और अगर यह कह दें कि जो भी आपकी इच्छा है, उनसे पूरी हो सकती है। फिर आपकी समझने में उत्सुकता नहीं रह जाएगी। फिर आप चाहेंगे कि कब यहां से छुटकारा हो। जो भी समझूंगा, वह पीछे भी हो सकता है। आपको तत्काल क्या खयाल आएगा? अगर आपको पता चले कि बाहर साइ बाबा खड़े होकर आपकी इच्छा पूरी कर सकते हैं; तो आपको पहला खयाल आएगा वह यह नहीं आएगा कि चमत्कार मदारीगिरी है। पहला खयाल आपको यह आएगा कि आपकी वासना क्या है। फौरन आपको अपनी वासना उठ जाएगी मन में कि तो फिर ठीक है, चमत्कार है, तो मैं इतनी मांग कर ही लूं।

आदमी जी रहा है अपनी वासनाओं से। वासनाग्रस्त आदमी, चमत्कार नहीं होता, ऐसा मान नहीं सकता। यह तकलीफ है। वह चाहता है कि चमत्कार हों ही। अगर एक साइ बाबा गलत हों, तो कोई बात नहीं, यह आदमी गलत होगा। लेकिन कहीं कोई न कोई चमत्कार कर रहा होगा; कोई दूसरा ठीक होगा!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः ये गलत होंगे, लेकिन कोई तो ठीक होगा। यह सवाल नहीं है। सब गलत सिद्ध हो जायें, तो भी...। रोज पता चल जाता है कि फलां आदमी गलत सिद्ध हो गया और कोई फर्क नहीं पड़ता। चमत्कार जारी रहते हैं। 'अ' गलत होता है, तो 'ब' करता है। 'ब' गलत होता है, तो 'स' करता है। कोई न कोई करता है। कोई न कोई देखने वाला तैयार है। चमत्कार नहीं रुकते। चमत्कारी गिरते जाते हैं, चमत्कार नहीं रुकते। क्योंकि कोई बहुत मौलिक वासना की तृप्ति हो रही है। हम हैं दीन और दुखी, बड़ी चाहों से भरे हैं, और कोई आशा नहीं दिखती कि ये चाहें पूरी हम कर पायेंगे। कोई पूरी कर दे आकाश से, तो ही एक मात्र आशा है।

इसलिए दुनिया में चमत्कार होते रहेंगे, जब तक दीनता, दुख, पीड़ा, मूढ़ता सघन है। और मैं नहीं सोचता हूं कि कभी भी ऐसा मौका आएगा कि आदमी इतना समझदार होगा कि चमत्कार न चलें। मुश्किल दिखता है, बहुत मुश्किल दिखता है। पांच हजार साल पहले चलते थे, तो हम सोचते थे विज्ञान विकसित नहीं हुआ है। अभी भी चलते हैं और विज्ञान इतना विकसित है! लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी जब तक नहीं बदलता, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आप कुछ भी खोज-बीन करके ले आओ, सब जाहिर कर दो...।

इधर मैंने एक प्रयोग किया। मैंने सोचा शायद इसका कुछ परिणाम हो, लेकिन मुझे लगा नहीं होगा। मैंने दो मित्रों को राजी किया है, कि मैं तुम्हें घुमाऊं सारे मुल्क में और जो-जो चमत्कार लोग दिखाते हैं, तुम मंच पर खड़े होकर दिखा दो। और फिर हम लोगों को समझा लें कि यह सब खेल है। मैंने कुछ मित्रों को दिखाए। तो उन्होंने देखकर कहा कि 'हां, यह होगा खेल। लेकिन 'सत्य साइ बाबा'—वह खेल नहीं है।' तब मैंने कहा, फिजूल है कि कोई...कोई मतलब नहीं है, इन दो बेचारों को परेशान करना! वे कहेंगे कि ये हैं मदारी,

लेकिन वे थोड़े ही मदारी हैं। क्या किया जा सकता है? इसमें कोई उनकी रक्षा कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं है। इनको कोई लेना-देना नहीं है लेकिन इनकी वासना! ये चाहते हैं कि कहीं तो कोई कर रहा हो चमत्कार जो सच्चा है! बस, इनकी चाह है।

तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि इन क्षुद्र बातों में लोगों को उलझाना, उनका समय नष्ट करना है। उनके मनों को लुभाना, व्यर्थ उलझाव में बनाए रखना, कुछ हल तो नहीं होता।

धार्मिक व्यक्ति का तो कर्तव्य एक है कि कैसे व्यक्ति का दुख शांत हो। इस दिशा में अगर वह कुछ उनको बता सके, कुछ उनको करवा सके, कुछ उनके जीवन को बदलने की कीमिया खोज सके...। बुद्ध ने कहा है कि मैं चिकित्सक हूं—वैद्य। मैं कोई चमत्कार नहीं दिखा सकता, मैं तो सिर्फ औषधि की प्रक्रिया बता सकता हूं। और तुम बीमार हो,अगर तुम्हारी बीमारी को मिटाने की इच्छा हो, तो ये औषधि का उपयोग कर सकते हो। तो मेरा तो औषधि में भरोसा है।

लेकिन इस तरह की उत्सुकता उन लोगों में होती है, जो कि सच में शांति की खोज में हों। अब जो इस खोज में ही नहीं है, उसके लिए तो...। फिर मैं मानता हूं कि इतनी बड़ी दुनिया है, उसमें बहुत तरह के लोग हैं, उसमें कोई चमत्कार देखना चाहता है तो उसको देखने का हक है। और कोई दिखाना चाहता हो तो उसको दिखाने का हक है। और दोनों मजा ले रहे हैं, तब हम क्यों बीच में बाधा डालें! उनको लेने-देने दीजिए। कभी समझ आएगी। ठीक है।

इसमें जो देख रहे हैं, उनका तो जीवन खराब हो रहा है। जो दिखा रहा है, उसका और बुरी तरह खराब हो रहा है। क्योंकि देखने वाले तो शायद कभी जाग भी जायें कि छोड़ो, कहां के खेल में पड़ गये। वह जो दिखाने वाला है, उसके अहंकार की इतनी तृप्ति होती रहती है कि उसे खयाल भी नहीं होता।

तो मेरे लिए तो साइ बाबा जैसे लोग दया के पात्र हैं, दयनीय हैं। उनका जीवन तो बिलकुल मिट्टी में जा रहा है। धर्म का कोई संबंध चमत्कार से नहीं है।

प्रश्नः चमत्कारों से लोग ठीक हो जाते हैं, उसका क्या कारण है?

बहुत से कारण हो सकते हैं। लेकिन चमत्कार नहीं है। चमत्कारिक भी मालूम हो, चमत्कार नहीं है। आदमी के मन के बहुत से नियम हैं जिनका हमें होश नहीं है। और उन नियमों के कारण बहुत-सी घटनाएं घटती हैं।

एक युवक मेरे पास आता था। पहली दफा जब आया तो किसी डाक्टर ने भेजा था। उसके पेट में दर्द था, वह डाक्टर का इलाज कर-कर के परेशान हो गया। तो उसने तो सिर्फ अपनी बला टाली, क्योंकि उस डाक्टर ने मुझे कहा कि यह तो बड़ी मुश्किल बात हो गई! मैंने तो इसको इसलिए हटाया कि यह रोज मेरे दवाखाने में बैठ जाता आकर और इसकी वजह से दूसरे मरीजों पर बुरा असर पड़ता। क्योंकि यह कहताः साल भर हो गया, अभी तक ठीक नहीं हुआ। तो मैंने उसके हाथ जोड़े और कहा तू उनके पास जा; अब उनसे ही ठीक होगा। हमसे ठीक नहीं होने वाला। सिर्फ बला टालने के लिए आपके पास भेजा था और वह ठीक हो

गया!

वह मेरे पास आया और कहा कि 'मुझे अपने हाथ का छुआ पानी दे दें, वह डाक्टर ने कहा है।' मैंने कहा, 'बात क्या है?' उसने कहा कि 'बात कुछ नहीं है। साल भर से मुझे पेट की तकलीफ है। और जिसको डाक्टर ठीक न कर पाया हो, वह फिर चमत्कार से ठीक होता है।'

डाक्टर ठीक नहीं कर पाया, तो इसका मतलब यह कि शरीर में कोई रोग नहीं है। नहीं तो डाक्टर ठीक कर लेता। ऐसी कोई बात नहीं थी। रोग सिर्फ मन में है। उसका सिर्फ खयाल है कि पेट में दर्द है।

मैंने उसको इनकार किया। उसको कहा कि 'यह मैं करूंगा नहीं, क्योंकि कल और लोग आ जायें!' तब उसने मेरे पैर पकड़ लिए। उसने कहा, 'आप क्या कह रहे हैं! मैं किसी को बताऊंगा नहीं।' 'यह बात छिपती नहीं। साल भर का बीमार है अगर ठीक हो गया, तो तू तो ठीक हुआ हम फंस गए! फिर कोई और आ जायेंगे!'

बारह बजे रात तक मैं उसे रोके रहा। जब वह बिलकुल छाती पीट रोने लगा, तो मेरी मां मौजूद थीं वहां, उन्होंने मुझे कहा कि बेचारा सिर्फ पानी ही मांगता है। तीन घंटे से मैं सुन रही हूं तुम्हारी बातचीत। इसको पानी दे दो। हो ठीक, न हो ठीक, झंझट मिटाओ और सो जाओ।

पर तीन घंटे उसे रोकना जरूरी था। क्योंकि जितना मैंने उसे रोका, उतना उसको पक्का होता गया कि पानी में कुछ है। नहीं तो फिर रोकने की बात भी क्या थी। मजबूरी में मैंने उसे पानी दिया। मैंने कहा कि 'तू कसम खा, किसी को बताएगा नहीं घर में।' जब उसने कसम खाई, तब मैंने उसे पानी दिया। पानी पीते से वह बोला कि 'अरे! मेरा दर्द तो चला गया।' और दर्द उसका चला गया।

यह न तो कोई संयोग है, न कोई चमत्कार है। उसका एक वहम था। और वहम को निकालने के लिए एक ही उपाय है—किसी पर भरोसा आ जाये। और कोई उपाय नहीं है।

वहम के निकालने का एक ही उपाय है कि उससे बड़ा वहम पैदा हो जाये। उसका वहम था कि पेट में दर्द है; उसका वहम है कि मैं चमत्कारी हूं। यह बड़ा वहम है। और जो झूठा पेट में दर्द पैदा कर ले, वह झूठा चमत्कारी पैदा कर ले, इसमें कठिनाई क्या है! है उसका ही खेल। मेरा कोई लेना-देना नहीं है। कल तक वह पेट में दर्द पैदा कर रहा था। डाक्टर को सालभर तक जिसने हराया, वह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं है! वहम पैदा कर सकता है। और दर्द जैसा वहम पैदा कर लिया, जिसमें दुख ही पाया, तो यह तो बड़ा सुखद था मामला। घूंट अंदर नहीं गया कि उसने कहा कि 'गजब! यह तो चमत्कार हो गया।' उसने कहा कि 'वह कसम-वसम मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि मेरी मां की तबियत खराब है।'

और आप जानकर हैरान होंगे कि वह एक बोतल रखने लगा, जिसको मुझसे छुआ कर ले जाता था और मरीजों को ठीक करने लगा। क्योंकि उसको देखकर मरीज, पूरा मुहल्ला जानता था कि यह तो क्रानिक मरीज था, वह कोई ठीक होने वाला प्राणी नहीं था। वह ठीक हो गया, तो उससे लोग मांगने लगे, कि किस तरकीब से...। और अनेकों को वह ठीक करने लगा। अब मैं उसको समझाऊं भी तो समझाने का कोई उपाय नहीं क्योंकि वह ठीक हो गया है। और ठीक होने का एक नियम है।

सौ में से नब्बे बीमारियां मानसिक हैं। इसलिए नब्बे बीमारियां तो चमत्कार से ठीक हो ही सकती हैं। वे

जो दस बीमारियां हैं, जो मानसिक नहीं हैं, वे भी भुलाई जा सकती हैं। जैसे कि झूठी बीमारी पैदा हो सकती है, वैसे सच्ची बीमारी भूल सकती है।

हिप्नोटिज्म में दो तरह के प्रयोग हैं, अभी किसी को सम्मोहित किया जाये और एक खाली कुर्सी रख दी जाये। जब वह सम्मोहित हो, तब उसको कहा जाये कि खाली कुर्सी पर उसका कोई परिचित व्यक्ति आकर बैठ गया। फिर उससे कहा जाये, आंखें खोलो। वहां कुर्सी खाली है। वह देखेगा बराबर कि फलां आदमी बैठा हुआ है। जो नहीं है, वह दिखाई पड़ रहा है। इससे उलटा भी हो सकता है। कुर्सी पर बैठा हुआ है आदमी। उसको कहो कुर्सी खाली है, यहां कोई नहीं है। फिर उसे आंख खोलने को कहो। उसको आदमी दिखाई नहीं पड़ेगा।

हमारा मन जो देखना चाहे, वह न हो, तो भी दिखाई पड़ सकता है। और हमारा मन जो देखना न चाहे, तो जो हो वह भी नहीं दिखाई पड़ेगा। अब इसके लिए जरूरी है कि एक बहुत गहरी आस्था का भाव पैदा हो जाये। चमत्कारी व्यक्ति उतना ही काम कर रहा है कि वह उतना भरोसा दिलवा रहा है कि ठीक है। अब इसमें कठिनाइयां ये हैं कि अगर चमत्कारी व्यक्ति, जैसे मैंने यह बात आपसे कह दी। अब आपके पेट में दर्द हो, तो मैं कुछ नहीं कर सकता। अब यह बेकार हो गया; मेरा चमत्कार काम नहीं करेगा। आपके पेट में दर्द हो तो मैं तभी आपको ठीक कर सकता हूं, जब मेरे आसपास मैं हवा बनाकर रखूं पूरी की पूरी, कि मैं चमत्कारी हूं। इसमें जरा भी एक्सप्लेनेशन खतरनाक है। इसमें जरा-सी व्याख्या साफ हो गई आपको, तो फिर फायदा मुझसे नहीं हो सकता।

आपको फायदा इसी आधार पर हो सकता है कि मैं चमत्कारी हूं, मैं फायदा करता हूं। अगर मैं आपको कहूं कि आपसे, आपको ही फायदा हो गया है, मैं तो सिर्फ बहाना था। तो हो सकता है, जो दर्द चला गया हो, वह भी वापिस लौट आये। बिलकुल लौट सकता है।

आपका अपने पर भरोसा है ही नहीं, यही तो तकलीफ है। इसके लिए कोई और चाहिए। आत्मविश्वास की कमी आपकी बीमारियों का आधार है। तो कोई आपको चाहिए, जो आत्मविश्वास दिला दे। वह किसी भी तरह से दिला दे। तो जितना प्रतिष्ठित हो वह विश्वास, उतना फायदे का है।

जैसे अगर आपको मुझे सच में ठीक करना है, तो मेरे आसपास दस-पच्चीस लोग चाहिए। जो आपके आते ही बताने लगें कि किसी की टांग ठीक हो गई, किसी का कान ठीक! और ये अपने आप इकट्ठे हो जाते हैं, इनको इकट्ठा करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। क्योंकि अगर मेरे पास दस आदमी आयें, उसमें से दो ठीक हो जायें तो जो आठ ठीक नहीं होंगे, वे किसी दूसरे को तलाशेंगे। वे यहां काहे के लिए आयेंगे। वे जो दो ठीक हो गए, वे यहां आयेंगे। मेरे आसपास इस तरह के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जायेगी, जो मुझसे ठीक हुए। और जब एक नया आदमी आता है बीमारी लिए हुए, तो बीमारी तो वह छोड़ना ही चाहता है। यहां देखता है—इसका यह छूट गया, उसका वह छूट गया! मेरे आने के पहले ही चमत्कार काफी हो चुका है! और उसके मेरे पास आने की बात है कि वह ऊंट पर आखिरी तिनका रखना है। वह ठीक हो जायेगा।

यह जो ठीक होना है, यह सीधे मन के नियम से हो रहा है। और चूंकि आप अपनी बीमारियां पैदा कर रहे हैं, इसलिए चमत्कार दिखाए जा रहे हैं। नहीं तो कहीं कोई चमत्कार की जरूरत नहीं है। पर ये चमत्कार

खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं कि आपकी मूल जो बीमारी की आधार-शिला थी, वह नहीं बदलती। बीमारी बदल जाती है।

इस आदमी का पेट ठीक हो गया, लेकिन यह आदमी तो वही का वही है। कल यह सिर दर्द पैदा कर लेगा, फिर इसको किसी चमत्कार की जरूरत है। परसों यह पैर की तकलीफ पैदा कर लेगा। इसका मन तो वही का वही है। बीमारी को एक तरफ से हटा दिया कि दूसरी तरफ से पकड़ लेगा। इस आदमी को कोई लाभ नहीं हो रहा है। क्योंकि लाभ तो इसको तभी हो सकता है, जब यह समझ ले कि बीमारी मैं पैदा कर रहा हूं, और होशपूर्वक उस बीमारी को छोड़ दे। फिर यह आदमी दुबारा बीमारी पैदा नहीं करेगा।

तो मेरे सामने दो विकल्प रहे सदा कि क्या मैं आपकी एक बीमारी में सहायता करके छोड़ दूं, कि दूसरी बीमारी आप पैदा करें! मेरे लिए सरल काम वही था कि आपकी एक बीमारी ठीक कर दी। आपको लगा कि बिलकुल ठीक हो गया; बात खतम हुई उसमें समझाने-बुझाने की कोई भी जरूरत नहीं है। समझाने-बुझाने का काम ही नहीं है उसमें बिलकुल। उसमें तो चमत्कारी पुरुष जितना चुप रहे, उतना अच्छा है। क्योंकि आप में बुद्धि डालना ठीक नहीं है। अबुद्धि से ही आपको फायदा हो रहा है।

दूसरा यह है कि मैं आपको समझाऊं कि आपकी सारी बीमारी सारे दुख की जड़ क्या है। मगर तब मुझे चमत्कारी होने का कोई उपाय नहीं है। तब तो मैं आपके साथ संघर्ष करूं। आपकी बुद्धि को निखारूं, तोड़ूं, मिटाऊं, नया बनाऊं कि किसी दिन ऐसा क्षण आ जाये कि न तो आप झूठी बीमारी पकड़ें, न झूठे चमत्कारों की जरूरत रहे। आप मुक्त हो जायें भीतर अपनी बीमारी से अपने बल से। उसमें आपकी सहायता करूं।

सच्चा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपकी सहायता करे स्वतंत्र होने के लिए कि एक दिन आप मुक्त हो जायें और स्वतंत्र हो जायें। अपने पैर पर खड़े हो जायें। और झूठा शिक्षक मैं उसको कहता हूं, जो आपकी बीमारी भी ठीक करे, लेकिन उसी कारण से करे जिस कारण से बीमारी थी।

मैं एक कहानी कहता रहा हूं। एक घर में एक मेहमान आकर रहा। तो मेहमान जवान था। और बिगड़ न जाये, तो घर के लोगों ने उसको डरवा रखा था कि बाजार न जाये रात, सिनेमा न जाये। बीच में एक मरघट पड़ता था, तो कहा जाता था कि उस मरघट से गुजरना बहुत खतरनाक है, भूत-प्रेत हैं। तो उसे भूत-प्रेत का डर पैदा हो गया। तो वह रात तो नहीं जाता था रास्ते की तरफ। लेकिन धीरे-धीरे डर इतना बढ़ा कि दिन में भी वह अकेला न जाये। तो घर के लोगों ने कहा कि यह तो मुसीबत हो गई। वे भूत-प्रेत, जिनसे रात में डरवाया था, वे कोई कम्पार्टमेन्ट तो मानते नहीं; वे दिन में भी डरवायेंगे। डर ही तो कारण था। डर पकड़ गया अब। तो वह दिन में भी कहे कि कोई साथ चलो! तो वह बस्ती में जाएगा अंदर। तो उन्होंने कहा, कोई उपाय करना पड़े। तो एक फकीर के पास ले गये। उस फकीर ने कहा कि 'इसमें कोई दिक्कत वाली बात नहीं है । यह ताबीज मैं बांधे देता हूं। इस ताबीज की इतनी ताकत है कि कोई भूत तेरे पास नहीं आ सकता । तू बिलकुल ताबीज पहनकर मरघट से निकल जा।'

ताबीज पहनकर वह आदमी मरघट से निकला। वहां कोई भूत तो था नहीं। कोई आया भी नहीं । लेकिन वह समझा कि ताबीज! अब वह ताबीज के बिना एक मिनट न रहे । क्योंकि ताबीज अगर रात छोड़कर भी रख दे, तो उसे घबड़ाहट लगेगी कि कहीं भूत-प्रेत पास न आ जायें। अब वह ताबीज की मुसीबत हो गई। वह

बीमारी वही की वही है! भूत-प्रेत से डरता था, अब ताबीज से डरने लगा कि कहीं ताबीज खो जाये, कोई ताबीज चुरा ले, या ताबीज गिर जाये या ताबीज के साथ कोई अशिष्टता हो जाये, या ताबीज अपवित्र हो जाये, या कुछ हो जाये। अब वह चौबीस घंटे ताबीज से घिर गया है। बीमारी वही की वही है। कल भूत सता रहे थे, अब ताबीज सता रही है! अब उसको ताबीज से छुटकारा करवाना है। हम छुटकारा करवा सकते हैं दूसरी चीज पकड़ाकर। मूल आधार वही रहेगा।

मेरी प्रक्रिया सारी इतनी है कि आपको कोई ताबीज न देनी पड़े। आपकी बीमारी है, तो चाहे थोड़ी देर लगे, मुश्किल पड़े, कोई फिक्र नहीं, उससे भी प्रौढ़ता आयेगी। लेकिन बीमारी जाये, नई बीमारी बिना पकड़े। इसको ही मैं कहूंगा कि असली चमत्कार है। बाकी सब धोखा-धड़ी है। और मन इतनी कुशलता से खड़ा करता है कि हमें खयाल ही नहीं है।

खोज कहती है कि सौ में से केवल तीन सांप में जहर होता है। सत्तानबे सांपों में जहर होता ही नहीं। लेकिन आदमी तीन परसेन्ट से ज्यादा मरते हैं। और कोई भी सांप काटे और मरने का डर पैदा हो जाता है। जहर है नहीं, उससे आप मरते कैसे हैं? सांप में जहर ही नहीं और आदमी को काटा, आदमी मर गया। आदमी सांप से कब मरता है! 'सांप ने काटा'—इससे मरता है।

असली जहर सांप में नहीं है, आदमी के मन में है कि सांप ने काट खाया। फिर चाहे चूहे ने काटा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; आदमी मर जायेगा। इसलिए सांप झाड़ा जा सकता है। क्योंकि कोई जहर तो होता नहीं। सत्तानबे मौके पर सांप झाड़ने वाला सफल होगा। क्योंकि जहर तो होता ही नहीं। कोई वास्तविक कारण नहीं है मरने का; सिर्फ यह खयाल...। तो मेरे एक मित्र जो सांप झाड़ने का काम करते हैं, उन्होंने सांप पाल रखे हैं। यह जरूरी है। जब उनके लड़के को सांप ने काट खाया, तो वे भागे मेरे पास आये कि आप कुछ करो। मैंने कहा, 'तुम तो न मालूम कितनों को झाड़ चुके हो!' उन्होंने कहा, 'वह इस पर काम नहीं करेगा। लड़का जानता है। वह जो तरकीब है, वह लड़का जानता है!' ज्ञान के साथ यह खराबी है। उस लड़के से मैंने पूछा 'तू क्यों घबड़ा रहा है? तेरे बाप को कह।' तो कहा, 'मुझे पता है। मुझ पर नहीं चलेगा उनका काम। क्योंकि मैं खुद ही उनका सांप छोड़ता हूं।'

तो सांप उन्होंने पाल रखे हैं। तो भारी मंत्र पढ़ेंगे, और मुंह से फसूकर गिरेगा। फिर वे चिल्लाएंगे, चीखेंगे। फिर सांप को आवाज देंगे। फिर जिस सांप ने काटा, वह सांप आयेगा। बाहर दरवाजे से चलता हुआ अंदर आयेगा। जब वह मरीज देखता है कि काटा हुआ सांप आ गया, तो वह भी चमत्कृत हो जाता है, क्योंकि सांप बहुत दूर है। जब वह आये तब...। फिर सांप आता है। वह सांप आकर बिलकुल कंपने लगता है और सिर पटकने लगता है, झाड़ने वाले के सामने। तो मरीज तो ठीक हो ही जायेगा। कहेगा, 'गजब का चमत्कार है।' फिर वे सांप को कहते हैं कि 'जहां उसको काटा है, वहां वापस उसका खून पीयो।' तो सांप मुंह लगाकर वहां से...। वे सब ट्रेन्ड सांप हैं। दो-चार बूंद खून को टपकाते हैं और कहते हैं, बस, जहर उसने वापस ले लिया।

उनके लड़के को काट लिया। अब वह लड़का कहता हैः हम खुद ही छोड़ते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत है। और बाप भी कहे कि 'मेरा काम नहीं चलेगा इसमें; आप कुछ करो।'

इस सारे चमत्कार की दुनिया में आपकी वे बीमारियां दूर हो रही हैं, जो कभी थी ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि आप तकलीफ नहीं पा रहे थे। आप तकलीफ पा रहे थे। आप मर भी जाते, यह भी हो सकता है। और लाभ तो पहुंचाया जा रहा है, इसलिए लाभ पाने वालों को दोष देने का भी कारण नहीं है। जब तक आप हो, तब तक किसी को झूठा सांप झाड़ना पड़ेगा। यह आपकी वजह से उपद्रव है।

आप जानकर हैरान होंगे कि ऐसी घटनाएं घटती हैं। बहुत प्रसिद्ध घटना है सूफी जुन्नैद के बाबत। वह निरंतर कहा करता था; उसने एक आदमी को मरते देखा, वह एक काफी हाऊस में बैठा हुआ था। और गपशप कर रहा था, कुछ लोग और बैठे हुए थे और एक आदमी आया, तो उस काफी हाऊस के मालिक ने कहा, 'अरे! तुम अभी जिंदा हो?' उस आदमी ने कहा, 'तुम क्या बात करते हो! तुम्हें किस ने कहा कि मैं मर गया?' उसने कहा, 'किसी ने कहा नहीं। हमने सोचा हुआ था। भूल हुई। साल भर पहले जब तुम यहां रुके थे, तुम्हारे साथ तीन आदमी और रुके थे उस रात यहां। चारों ने रात जो खाना खाया था यहां, वह विषाक्त हो गया था। तुम तो आधी रात उठकर चले गए, तुम्हें कहीं जाना था यात्रा पर। बाकी तीन मर गए थे। तो हम यही सोचते थे कि तुम मर गए होगे!' साल भर बाद वापस लौटा था। यह सुनकर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

जुन्नैद ने लिखा है, जब मैंने उसे बेहोश गिरते देखा, तो मुझे दुनिया के सब चमत्कार समझ में आ गए। यह जो आदमी है, यह गिर पड़ा! तीन मर गए! विषाक्त भोजन! साल भर का फासला ही मिट गया। उसको खयाल ही न रहा कि साल भर पहले की बात है। उसको होश में लाने के लिए पड़ोस से झाड़ने-फूकने वाले बुलाने पड़े। बामुश्किल वह होश में आया।

आदमी का मन और उसके नियम, उनका सारा खेल है।

प्रश्नः किसी को भगवान मानने का क्या अर्थ है?

मेरी दृष्टि में तो भगवान के सिवाय कुछ और है नहीं। कोई जागा हुआ भगवान है, कोई सोया हुआ भगवान है; कोई अच्छे भगवान, कोई बुरे। बाकी भगवान के सिवाय कुछ नहीं है। (बुरे भी होते हैं भगवान?) बिलकुल। क्योंकि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है। अगर बुरे को हम काट दें अच्छे से, तो फिर बुरा होगा कैसे? होना मात्र ही उसका है। तो कोई राम की शक्ल में भगवान, कोई रावण की शक्ल में भगवान। लेकिन रावण को अगर हम कह दें कि उसमें भगवान नहीं है, तो फिर रावण के होने का कोई उपाय नहीं है। होगा कैसे? अस्तित्व ही उसका है।

हमें कठिन लगता है कि बुरे भगवान कैसे? चोर भगवान कैसे? बाकी अगर वही है, तो चोर में भी वही है। उसका ही होना सब कुछ है, तो फिर कोई चीज उसके बाहर नहीं है।

आमतौर से हमारी धारणा ऐसी है कि भगवान कहीं कोई सातवें आकाश में बैठा हुआ, कोई व्यक्ति, सारी दुनिया को चला रहा है। यह बचकानी धारणा है। इसका कोई मूल्य नहीं। भगवान से मेरा अर्थ हैः अस्तित्व, होना मात्र। और जिस दिन भी कोई उस होने को समझ लेता है, अपनी उपाधियों से हटकर, अपने रोगों से हटकर उस शुद्ध होने को थोड़ा समझ लेता है, वही भगवान हो गया।

यह हमारा मुल्क अकेला मुल्क है, जिसने हिम्मतपूर्वक यह कहा है कि सभी में भगवान है। और भगवान को अलग न रखकर हमने प्रत्येक के भीतर केंद्र पर रख दिया है। वह होने का सहज गुण है। न जानो, सोये रहो। मत पहचानो, यह हो सकता है। मगर वह भी तुम्हारी मरजी! कोई भगवान अपने को नहीं पहचानना चाहता, तो क्या किया जा सके! वह नहीं पहचाने। वह जिस दिन भी पहचानेगा, उस दिन खयाल में आ जायेगा।

तो भगवान कहीं कोई दूर, कोई अलग वस्तु है,ऐसा नहीं। मेरी धारणा यह है कि तुम्हारा होना ही भगवत्ता है। और जैसे मछली को पता नहीं चलता कि सागर कहां है...। पता भी कैसे चले! क्योंकि उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, उसी में मरती है। मछली को तो पता ही तब चलता है सागर का, जब कोई उसे खींचकर किनारे पर निकाल लेता है।

हमारी मुसीबत यह है कि भगवान को छोड़कर कोई किनारा भी नहीं, जहां खींचकर हमको निकाला जा सके। इसलिए हमको पता नहीं चलता उसके होने का कि वह क्या है, कहां है। मछली तट पर आकर तड़पती है, तब उसको पता चलता है कि कुछ खो गया है, जो सदा था। लेकिन जब था, तब पता भी नहीं चलता था।

आदमी को भगवान के बाहर नहीं खींचा जा सकता। यही तकलीफ है। नहीं तो हमको पता चल जाए कि भगवान क्या है।

लोग कहते हैं कि भगवान मिलता नहीं। और मैं कहता हूं कि चूंकि तुमने कभी खोया नहीं, यही तकलीफ है। एक दफे भी खो देते तो वह मिल जाता। मिलने के लिए खोना बिलकुल जरूरी शर्त है। और चूंकि हम उसी में जी रहे हैं, उसका हमें पता नहीं है।

फिर मेरे मन में, चूंकि मैं देखता हूं कि बुरा भी वही है, बुराई के प्रति भी मेरे मन में कुछ बुरा भाव नहीं रह जाता। इसको मैं एक आध्यात्मिक रूपांतरण की कीमिया मानता हूं।

अगर यह मेरा खयाल हो कि सभी वही है, तो जिसको हम बुरा कहते हैं, वह भी वही है। तो फिर बुराई के प्रति भी कोई बुराई का भाव नहीं रह जाता। ठीक है; वह भी ठीक है। शायद वह भी अनिवार्य हिस्सा है। शायद उसके बिना भी जगत नहीं हो सकता। जैसे अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं हो सकेगा। और मृत्यु के बिना जीवन नहीं हो सकेगा। शायद इसी तरह रावण के बिना राम भी नहीं हो सकते। शायद परमात्मा के होने के ढंग में ये दोनों बातें साथ-साथ सम्मिलित हैं कि जब भी वह राम होगा, तब रावण भी होगा; नहीं तो नहीं हो सकता।

तो यह द्वंद्व जो हमें इतना विपरीत दिखाई पड़ता है, कहीं भीतर जुड़ा हुआ है। थोड़ा रावण को अलग कर लें राम की कथा से। और राम के प्राण निकल जाते हैं। रावण के बिना क्या बल है कथा में? कथा में बचेगा क्या? एक रावण को हटा लें, तो पूरी रामायण व्यर्थ हो जाती है।

तो जब मैं ऐसा देखता हूं कि बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, तो बुरा भी कुछ बुरा नहीं रह जाता। इसलिए मेरी कोई चेष्टा ऐसी नहीं है कि बुरे आदमी को अच्छा बनाऊं। मेरी चेष्टा ऐसी है कि बुरा आदमी ठीक से बुरा हो जाए, और अच्छा आदमी ठीक से अच्छा हो जाये। मेरा फर्क समझ रहे हैं!

यह बुरा आदमी अच्छा हो जाये, ऐसी मेरी कोई कोशिश नहीं—कि रावण को राम बनाओ। कुछ

मतलब हल न होगा। सब खराब हो जाएगा। सब खराब हो जाएगा और कुछ न कहो कि रावण कोई दिन राम बन जाए, तो राम को बेचारे को तत्काल रावण बनना पड़ेगा क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है।

तो रावण अच्छा रावण हो—शानदार। पूरी तरह प्रकट हो। और राम पूरी तरह प्रकट हो। और राम पूरी तरह प्रकट हो अपनी प्रतिमा में। तो यह खेल का पूरा रूप आ जाए।

तो मैं नहीं कहता किसी को कि तुम ऐसे हो जाओ। मैं कहता हूंः तुम जो हो, वही तुम पूरी तरह हो जाओ। कोई ढांचा नहीं देता हूं कि ऐसे बनो। किसी को मैं ढांचा देने वाला नहीं हूं। तुम जो बन सकते हो, वही बनो; उसमें पूरी तरह संलग्न हो जाओ। और कैसे पूरी तरह संलग्न हो सकते हो, वह मैं जरूर कहता हूं। और जिस दिन तुम जो हो वही बन जाओगे, उस दिन तुम्हें परमात्मा की प्रतीति हो जायेगी। क्योंकि जिस दिन तुम पूरे खिलोगे अपने व्यक्तित्व में वही—वही अनुभव है उसका। व्यक्ति का पूरा खिल जाना ही, उसके भीतर जो छिपा है, उसका पूरा पंखुड़ियों तक फैल जाना ही अनुभव है।

तो मेरे लिए भगवान तो सभी हैं। अगर इसका खयाल भी पैदा हो जाए कि मैं भी भगवान हूं, तो तुम्हारी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाए। क्षुद्र से जोड़ना ही क्यों नाता अपना। नाता ही जोड़ना हो, तो विराट से जोड़ लेना चाहिए।

सातवां प्रवचन

संन्यास और अंतस-क्रांति

अगर आप पुरुष हैं और आपको किसी स्त्री का आकर्षण है, तो यह आकर्षण बहुत गहरे में आपके भीतर ही जो आधी स्त्री बैठी है, उसके प्रति है। और जब तक यह स्त्री भीतर नष्ट न हो जाये, तब तक आप बाहर कितनी पत्नियां छोड़ते रहें, भागते रहें, कोई परिणाम नहीं होगा। आपके मन में स्त्री का आकर्षण बना ही रहेगा। वह घूम-फिर कर आता ही रहेगा। फिर आप नयी-नयी कल्पनाओं में उसका ही रस लेते रहेंगे।

संन्यास बच्चों जैसी बात नहीं है कि एक लड़के को साधु-संन्यासियों की बात सुनकर या किसी लड़की को भावावेश आ गया और उसने कपड़े बदल लिए और कुछ उलटा-सीधा कर लिया, तो वह कोई संन्यासी हो गया! भीतर उसकी साइक कैसी बनेगी! उसका पूरा का पूरा अंतःकरण और मन कैसे बनेगा? उस मन में तो, उसके अनकांशस में विपरीत लिंग बैठा हुआ है। अगर वह पुरुष है, तो उसके अनकांशस में स्त्री है; और अगर वह स्त्री है, तो उसके बहुत गहरे में पुरुष बैठा हुआ है। और उसी का आकर्षण है भीतर। बाहर उसी की खोज चलती है।

इसलिए आप हैरान होंगे कि एक पत्नी से आप विवाह कर लेते हैं, थोड़े दिन बाद पाते हैं कि यह तो मेरे मन की स्त्री नहीं मिली! मन की स्त्री कौन? मन की स्त्री, आपके भीतर एक मन में रूप बैठा हुआ है, आप उसकी खोज में हैं और वह स्त्री जब किसी स्त्री के बिलकुल निकट, निकट मिलेगी, तो आपको ज्यादा प्रेम मालूम होगा और अगर नहीं मिलेगी, तो अप्रेम मालूम होगा। और उसकी खोज बड़ी कठिन है कि वह स्त्री पूरे

जमीन पर कौन-सी होगी, जो आपके मन में एक प्रतिछवि स्त्री बैठी है, उसके ठीक प्रतिरूप हो, उसके ठीक सामानांतर हो, तो आपको तृप्ति होगी, नहीं तो आपको तृप्ति नहीं होगी। वह जो भीतर बैठी हुई स्त्री है और जो भीतर बैठा पुरुष है, उसका विलीनीकरण कैसे हो जाये और वहां एक ही चेतना हो जाये, कोई भेद न हो, तब व्यक्ति संन्यास को उपलब्ध होता है।

यह बच्चों जैसी बात नहीं है, जिसको हम संन्यास समझते हैं। कोई पत्नी को, घर को छोड़कर भाग जाने की बात नहीं है। इधर घर छोड़ेंगे, दूसरी जगह घर बनाना शुरू कर देंगे। उसका नाम आश्रम होगा, कुछ और होगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; इससे कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। इधर परिवार छोड़ेंगे, उधर भी परिवार बनाना शुरू कर देंगे जो शिष्यों का, शिष्याओं का होगा। वही आपका परिवार होगा। उससे भी आपके मोह होंगे, दुख होंगे, सुख होंगे, खुशी होगी। आपका परिवार—यह सारा का सारा! आपका शिष्य आपके साथ होगा। यह कोई मेरी दृष्टि नहीं है।

जिनको आप संन्यासी कहते हैं, उनको मैं नहीं कहता। जिनको आप गृहस्थ कहते हैं, उनको गृहस्थ नहीं कहता। मैं तो सारी दुनिया को ही गृहस्थ मानता हूं। उन गृहस्थों में से कुछ लोग रूपांतरण को उपलब्ध होकर संन्यास को पाते हैं। लेकिन वह संन्यास कोई वस्त्रों से संबंधित है? इसका आप स्मरण रखें। वस्त्र बदलने की बात ही इतनी बचकानी और इम्मैच्योर है कि कोई बहुत सोच-विचार का आदमी यह नहीं करेगा।

मैं अभी गया; जहां मैं ठहरा राजस्थान में, वहां के डिप्टी कलेक्टर आये। वे मुझसे बोले, 'अकेले में मुझे बात करनी है।' अकेले में मैंने उनको मिलने को वक्त दिया। मुझसे बोले, 'मैं यह पूछना चाहता हूं कि आपके जैसे ही वस्त्र पहनने से कुछ होगा?' तो हम इस पर हंसते हैं। हम कहेंगे, 'कैसी बचपने की बात है! वस्त्र पहनने से क्या होगा?' लेकिन सारे संन्यासियों को आप पूज रहे हैं। क्यों पूज रहे हैं आप? इस पर हमें हंसी आती है कि यह डिप्टी कलेक्टर है कैसा नासमझ! मैंने उनसे कहा, 'वस्त्र से क्या वास्ता है? अगर बदलने का भी खयाल आया, तो कुछ वस्त्र बदलने का खयाल आया!'

और थोड़ा खयाल आयेगा, तो इस वक्त खायें कि न खायें, कि इस समय खायें कि न खायें, कितना खायें कि क्या खायें? यह खयाल आयेगा। ये भी वस्त्र ही हैं। ये कोई बहुत गहरे में आपके प्राण नहीं बदल देंगे। इनसे कोई आपकी आत्मा परिवर्तित नहीं हो जायेगी कि आपने सांझ को खाया कि रात को खाया। इससे कोई आत्मा नहीं बदल जायेगी आपकी। यह 'अच्छा','बुरा' बहुत सामान्य तल पर, वस्त्र बदलने जैसा है। आप सुबह कब उठे—पांच बजे उठे कि सात बजे; कि आपने रोज स्नान किया कि नहीं किया—ये सारे के सारे वस्त्र हैं, और इनसे कोई आपके प्राण नहीं बदलते हैं। प्राण बदलना बड़ी वैज्ञानिक साधना की बात है। और उसको बदलने के लिए इन छोटी बातों में पड़ने का कोई सवाल नहीं है। उस तरफ जो उत्सुक हैं, उनको इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्या वस्त्र हैं और क्या नहीं हैं। ये बहुत गौण और बच्चों जैसी बातें हैं।

लेकिन, जिसको हम कहें ईडिऑटिक माइंड, जड़ बुद्धि उसका एक लक्षण होता हैः अनुकरण। बंदरों में देखा होगा। एक बंदर जो करेगा, दूसरा बंदर भी उसका अनुकरण करेगा। हम सब मनुष्यों में भी इमीटेट, नकल करने वाला मन है, जो अनुकरण करना चाहता है। एक आदमी ने ऐसा कपड़ा पहना, दूसरा आदमी भी वैसा पहन लेगा। विनोबा के साथ जायें, तो दस-पच्चीस विनोबा दिखाई पड़ते हैं! इनसे पूछो कि 'इनको क्या

हो गया?' उन्होंने देखा कि विनोबा दाढ़ी बढ़ाते हैं, विनोबा ऐसा रहते हैं। विनोबा ऐसा कपड़ा बांधते हैं, तो वे भी वैसे ही बांधे हुए खड़े हैं, इस भ्रम में कि ऐसा करने से विनोबा हो जायेंगे! ऐसा करने से जो विनोबा के भीतर घटित हुआ है, इनके भीतर घटित हो जायेगा! यह इन्होंने काम किया है इमीटेशन का। यही आंतरिक भाव इनके जीवन में कभी नहीं हो सकता। यानी यह इतनी अबुद्धि की सूचना हो गयी शुरू से ही! यह शुरू से ही जो मांइड है, यह मूर्खतापूर्ण हो गया। अब इससे कोई आशा नहीं रही। अगर विनोबा को थोड़ा खयाल हो, तो इन सबको विदा करना चाहिए। इनकी यहां कोई जरूरत नहीं है।

मेरे पास लोग पहुंच जाते हैं। वे मेरे पास रहेंगे, तो मेरी जैसी दाढ़ी बना लेंगे; यह करेंगे। मैं उनको कहूंगा, तुम जाओ, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जिस माइंड को मैं मूर्खतापूर्ण कह रहा हूं, उसी को लेकर तुम यहां आये हुए हो, तो उसका कोई मतलब नहीं है। यह जो अनुकरण करने वाला, किसी दूसरे के ढंग को करने वाला यह जो मन है, यह बहुत निम्न कोटि का मन है। मगर यह मन बड़ा सफल हो जाता है। इसमें एक खूबी होती है। जितना मूढ़ आदमी हो, उतना किसी भी काम को सख्ती के साथ कर सकता है। जितना विचारशील आदमी हो, उतना कठिन हो जाता है। विचारशील आदमी में लिक्विडिटि होती है, लोच होता है।

मूढ़ आदमी में लोच नहीं होता है। उसने तय कर लिया कि जीवन भर विवाह नहीं करेंगे, तो वह जीवन भर विवाह नहीं करेगा, चाहे कुछ भी हो जाये! चाहे उसके चित्त में कितने कष्ट आयें, परेशानियां आयें, वह डटा ही रहेगा। हम कहेंगे, 'कैसा संकल्पवान है!' विचारवान सोचेगा, कि यह संकल्प योग्य भी है या नहीं। बहुत विचारवान आदमी कल के लिए संकल्प ही नहीं करता, आज में जीता है। क्योंकि कल मेरे पास विवेक रहेगा; जो ठीक लगेगा, वह करूंगा।

मृदुला बेन ने मुझे पूछा, 'फलां जगह जाने का मन नहीं होता, तो आप मुझे कहें कि मैं जाऊं कि नहीं। क्या मैं बिलकुल तय कर लूं, नक्की कर लूं कि वहां नहीं जाना है?' मैंने कहा, 'नक्की करने वाली बात ही गलत है। कल मन हो तो जाना; आज मन नहीं है तो मत जाओ। तुम्हारे पास विवेक है, अपने विवेक को हमेशा मुक्त रखो। तुम्हें ठीक लगता है कहीं जाना—जाओ। कल ठीक न लगे, मत जाना। परसों ठीक लगे, जाना। तुम्हारे पास विवेक रहेगा, तो आज से कल की स्थिति को बांधते क्यों हो! और सिर्फ जड़ आदमी बांध सकता है। जो बहुत विकासशील चेतनाएं हैं, वे बांध नहीं सकतीं।'

पीछे बर्ट्रेन्ड रसेल को किसी ने पूछा कि 'आपकी चालीस साल की किताबें हम पढ़ते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि जो आपने सन उन्नीस सौ तीस में कहा था, उन्नीस सौ पैंतीस में उससे भिन्न बात कही है!' बर्ट्रेन्ड रसेल ने कहा, 'मैं जिंदा आदमी हूं। मैं कुछ मर नहीं गया हूं। मैं जिंदा आदमी हूं; मैं विकास कर रहा हूं। मेरा चित्त रोज आगे बढ़ रहा है। उन्नीस सौ तीस का जो बर्ट्रेन्ड रसेल है, उसको मैं गलत कहता हूं। उन्नीस सौ पैंसठ वाला रसेल उन्नीस सौ तीस वाले रसेल को कैसे माने! वह मुर्दा आदमी हो गया; उन्नीस सौ तीस में मर गया उससे मुझे क्या लेना-देना है? मैं क्यों हां कर दूं! मैं मरा हुआ आदमी होता तो उन्नीस सौ तीस में मैंने जो किताब लिखी थी, उन्नीस सौ पैंसठ में भी कहता कि वही ठीक है।'

यह जो पकड़ है हमारे दिमाग की...! अब एक आदमी है, अभी कल ही बात हुई—निरंतर उनसे बात

होती है। तय कर लें! क्या तय कर लें? तय करने वाला क्या तय कर रहा है? यह तो तय करना ही गलत बात है। जीयो, और विवेक को जगाओ और विवेक के प्रकाश में जो ठीक लगे वह करो। अगर ठीक-ठीक विवेक जगता रहे, तो यह निश्चित है कि एक दिन आप संन्यस्त हो जाओगे। संन्यस्त का मतलब? आप घर छोड़कर नहीं भाग जाओगे, बल्कि आप जहां भी जाओगे, वहां आपकी वृत्तियां ऐसी परिवर्तित हो जायेंगी कि घर अपना न मालूम होगा, पुत्र अपना न मालूम होगा, धन कोई आकर्षण न रखेगा। भीतर वृत्ति का परिवर्तन होगा और बाहर की दुनिया बाहर रह जायेगी और आप भीतर रह जाओगे और वे दोनों को जोड़ने वाले जो राग और द्वेष के नाते हैं, वे शिथिल हो जाते हैं।

विवेक के जगने से राग और द्वेष शिथिल हो जाता है। लेकिन अगर हम राग-द्वेष के साथ जबरदस्ती करें बिना विवेक को जगाये, तो यह दुनिया पैदा होती है। राग वाले की दुनिया को हम कहते हैं कि ये गृहस्थ हैं। और इस दुनिया को द्वेष करने वाले लोगों को हम कहते हैं कि ये संन्यस्त हैं। राग और द्वेष मन की दो बीमारियां हैं। किसी को राग करने की बीमारी है और किसी को द्वेष करने की बीमारी है।

द्वेष क्या है? उलटा हुआ राग है। मैं आपको राग करता हूं तो सोचता हूं कि आप रोज-रोज मेरे पास आयें। अगर द्वेष करने लगूं, तो सोचूंगा कि कभी मेरे घर न आयें। राग उलट गया। रागी सोचता है कि धन बहुत मेरे पास हो। विरागी सोचता है कि धन को छोड़कर भागूं। वह धन का द्वेषी है। एक धन का रागी है। धन के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं। स्त्री के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं। पत्नी, बच्चों और परिवार के रागी को हम गृहस्थ कहते हैं और द्वेषी को हम संन्यासी कहते हैं।

जिसको मैं संन्यास कहता हूं, वहां राग-द्वेष दोनों नहीं रह सकते हैं, तो संन्यास फलित होगा। जिसमें राग-द्वेष है, वह गृहस्थ है और जिसमें राग-द्वेष नहीं है, वह संन्यासी है। लेकिन अगर मन को पकड़ेंगे और वहां गहरे में पकड़ेंगे, तो राग-द्वेष से शून्य हो जाना संन्यास है, राग-द्वेष से भरे रहना गृहस्थ है।

तो गृहस्थों के दो रूप हैं—घर में रहने वाले और घर को छोड़कर भागने वाले। ये दो गृहस्थों के रूप हैं। ये दोनों ही गृहस्थ हैं। इसलिए दुनिया में संन्यासियों ने गृहस्थियां बना ली हैं, दुकानें बना ली हैं। अगर संन्यासी ठीक-ठीक हो तो वह किसी गृहस्थी का हिस्सा नहीं रह जायेगा।

अब एक आदमी कहता है, मैं जैन संन्यासी हूं। एक आदमी कहता है, मैं हिंदू संन्यासी हूं। कोई कहता है, मैं मुसलमान संन्यासी हूं। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम संन्यासी होकर जैन कैसे हो गये? यह गृहस्थी तुम्हें कैसे पकड़े हुए है जैन वाली! तुम संन्यासी होकर हिंदू कैसे रह गये? संन्यासी तो बस संन्यासी हो जायेगा। हिंदू-जैन की गृहस्थियों से उसे क्या लेना-देना है? लेकिन नहीं। उसमें और छोटी...। वह जैन जो संन्यासी है, वह सिर्फ जैन संन्यासी नहीं है। दिगंबर का है या श्वेतांबर का है। वह श्वेतांबर का भी पूरा नहीं है। उसमें भी और वर्ग हैं, वह तेरापंथी है या फलां है या ढिमका है!

ये बच्चों जैसी बातें हैं और ये गृहस्थियों के सब सूक्ष्म रूप हैं। लेकिन हम उनको आदर देते रहे हैं। और ट्रेडीशनली, परंपरा से जिस चीज को हम पकड़े रहते हैं, उसे पकड़े चले जाते हैं। हमारी कभी बुद्धि इतनी सजग नहीं होती कि कोई बात केवल चलते रहने से सत्य नहीं होती है। कोई बात हजार वर्ष भी चले, तो भी सत्य नहीं हो जाती। कोई बात लाख वर्ष भी चले, तो सत्य नहीं हो जाती। सत्य होना बड़ी और बात है। परंपरा

होने से कोई बात सत्य नहीं होती।

सोच विचार करें, देखें, समझें कि ये सब गृहस्थी के रूप हैं या क्या हैं? आपको दिखायी पड़ेगाः गृहस्थियों के रूप हैं। इनमें लड़ाइयां हैं, जैसे गृहस्थियों में होती हैं। जैसे एक परिवार से दूसरे परिवार के पुश्त-दर-पुश्त झगड़े होते हैं। इनके भी झगड़े हैं पुश्त-दर-पुश्त। पीढ़ियां बदल जाती हैं, ये गृहस्थियों के झगड़े जारी रहते हैं कि वह फलां-फलां...! इनके झगड़े जारी रहते हैं! इनके सब राग हैं, द्वेष हैं। यह हमारा मोटा विभाजन चल रहा है ऐसा। तो आपको लगता है...मुझसे ही पूछें कि मैं कौन हूं? मेरी बड़ी कठिनाई है। मैं अपने को क्या कहूं? मैं किस गृहस्थी में रखूं, आप वाली कि संन्यासी वाली? मुझे दोनों ही गृहस्थियां दिखायी पड़ती हैं। मुझे लगता है चित्त धीरे-धीरे राग और द्वेष दोनों से परे चला जाये, तो एक स्थिति होगी और उस स्थिति में आपको कोई भय नहीं होगा कि आप घर में हैं कि पहाड़ पर। भय तो तभी तक है, जब तक भीतर राग-द्वेष है। जब राग-द्वेष न रहा, तब एक मंदिर में आप सोये हैं कि वेश्यालय में सो गये हैं, क्या फर्क पड़ता है?

विवेकानंद ने लिखा कि जब मैंने रामकृष्ण के पास जाना शुरू किया, तो मैं पाप-पुण्य की भावनाओं से भरा हुआ था। घर से जाते और रामकृष्ण के दक्षिणेश्वर तक पहुंचने के बीच वेश्याओं का मुहल्ला पड़ता था। तो मैं वहां से नहीं निकलता था, करीब के रास्ते से। मैं कोई डेढ़ मील का चक्कर लगाकर जाता था कि वेश्याओं के मुहल्ले से मैं कैसे निकलूं! मैं हूं संन्यासी, वेश्याओं के मुहल्ले से मैं कैसे निकलूं?

फिर हिंदुस्तान से बाहर जाते थे विवेकानंद, तो राजस्थान में वे खेतड़ी महाराज के यहां रुके। तो वह राजा तो राजा था; विदा कर रहा था; विवेकानंद अमरीका जाते थे; तो उसने एक वेश्या को बुला लिया था विदा-समारोह में नाचने के लिए! राजा तो राजा। बुद्धि ऐसी थी कि जब विदा-समारोह हो रहा है, तो कुछ नाच-गाना होना चाहिए। यह फिक्र ही नहीं कि संन्यासी है। और उसने एक बहुत बड़ी वेश्या को काशी से बुलवा लिया। विवेकानंद को पता चला, तो घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि 'मैं संन्यासी और मेरी विदा में वेश्या नाचेगी! कैसा मामला है?' ठीक ऐन वक्त पर राजा बुलाने आया। विवेकानंद ने कहा, 'मैं नहीं जाता। मैं हूं संन्यासी।'

वेश्या को पता चल गया। विवेकानंद, एक संन्यासी, भारत के बाहर जाता है, उसके स्वागत में जा रही हूं। वह बेचारी बड़े अदभुत भजन इकट्ठे करके लायी थी। ऐसा भजन इकट्ठा करके लायी थी कि संन्यासी का स्वागत हो, उसके योग्य कुछ हो। वह बड़े पवित्र भाव से भर कर आयी थी। फिर उसको पता चला, विवेकानंद नहीं आये। राजा ने कहा, 'नहीं आता संन्यासी, तो समारोह तो होने ही दो। वेश्या आयी है, तो वह नाचे।' तो उसने नरसी मेहता का एक गीत गाया। उसने गायाः 'एक लोहा पूजा में राखत...।' यह भजन गाया। उसने गीत गाया कि 'एक तो लोहा हम रखते हैं भगवान के घर में और एक रहता है कसाई के घर। लेकिन अगर पारस पत्थर के पास ले जाओ, तो वह यह न कहेगा कि यह कसाई का लोहा है, इसको हम सोना नहीं कर सकते! उसको तो कोई भी लोहा छुये, तो सोना हो जायेगा।' तो संन्यासी को क्या भेद है कि कौन वेश्या है और कौन वेश्या नहीं है? उसके पास तो कोई भी आये,सोना हो जाना चाहिए।

विवेकानंद पास के ही छोटे से झोपड़े में बैठे थे। बड़ा प्राण घबड़ाया और गीत सुना तो बड़ा बोध हुआ।

रोने लगे। लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं पड़ी जाने की उसके पास। अमरीका से लौटकर उन्होंने कहा, 'अब मैं सोचता हूं कि कैसी बच्चों जैसी बात है! अगर मुझे वेश्या के घर भी सोने को मिल जाये, तो वैसे ही आनंद से सोऊंगा, जैसे मंदिर में सोता हूं। आज मैं जानता हूं, वह मेरी मूर्खता थी और मेरी ही कमजोरी थी। वेश्या से कोई वास्ता नहीं था उस बात का। वह मेरी ही कमजोरी थी, मेरा ही भय था, डर था वही मुझे परेशान किये था।'

आपके भय आपको परेशान करते हैं, आपके राग आपको परेशान करते हैं। इनको तो बदलिए मत और परिस्थितियों को छोड़कर भाग जाइए, तो इसको हम समझते हैं, संन्यास है। यह बिलकुल संन्यास नहीं है। मेरी दृष्टि में इनमें आधे से ज्यादा लोग तो जिनको हम कहें, न्यूरोसिस के शिकार हैं, थोड़े पागलपन के शिकार हैं—आधे से ज्यादा लोग! आधे से ज्यादा लोग जीवन से ऊबे और परेशान लोग हैं। यानी संन्यास लेने का मौका न मिलता, तो ये आत्मघात कर लेते।

आपको शायद खयाल न हो, जिन मुल्कों में संन्यासी होने की व्यवस्था है, उन मुल्कों में आत्मघात की संख्या कम होने का और कोई कारण नहीं है। उन मुल्कों में आत्मघात की संख्या कम है। और जिन मुल्कों में संन्यासी की व्यवस्था नहीं है, वहां आत्मघात की संख्या ज्यादा है। पागलों की भी संख्या वहां ज्यादा है, जहां संन्यासी की व्यवस्था नहीं है। और जहां व्यवस्था है, वहां संख्याएं बहुत कम हैं। वह स्वाभाविक है। इनमें से बहुत से सुसाइडल माइंड के लोग हैं; वे जिंदगी को नष्ट कर देना चाहते हैं कि हम नहीं जीना चाहते हैं।

ऐसी जब स्थिति बनती है, तब हिंदुस्तान में कोई विकास नहीं होता है। एक रास्ता यह है कि मर जायें; एक रास्ता यह है कि जाकर संन्यासी हो जायें। ये दो मार्ग हैं। अगर कभी इनके चित्त का ठीक-ठीक विश्लेषण हुआ, जो कभी हुआ नहीं है...। और न हमने कभी ईमानदारी से कुछ समझने की कोशिश की है, न वैज्ञानिक ढंग से जांचने की कोशिश की कि मामला क्या है! इनमें आधे से ज्यादा लोग तो मानसिक रुग्णताओं के शिकार निकलेंगे। आधे से ज्यादा लोग आत्मघाती प्रवृत्तियों से प्रभावित लोग निकलेंगे। इनमें से एक दो व्यक्ति मुश्किल से हो सकते हैं, जिनके जीवन में संन्यास फलित हुआ है। और ऐसे व्यक्तियों को कभी आप न पहचान पायेंगे, क्योंकि वह कभी आपके किसी ढांचे में खड़ा नहीं होता है। आप कहें उसको कि 'ऐसा कपड़ा पहनो, ऐसा सिर घोंट दो!' ऐसा बुद्धू नहीं है वह आदमी, जिसके जीवन में संन्यास फलित हुआ हो। संन्यासी तो रिबेलियस, विद्रोही होता है। आपको मानेगा वह? कि कहोगे जैसा, वह वैसा करेगा?

इसलिए संन्यासी को कभी आप नहीं पहचान पाते। आप हमेशा ढोंगी को ही पहचान सकते हैं। ढोंगी आपकी मानकर चलता है, आपके पीछे चलता है। संन्यासी को आप कभी नहीं स्वीकार कर पाते। इसलिए जब भी संन्यासी खड़ा होगा, तभी उसका विरोध शुरू हो जायेगा। दुनिया में जब भी संन्यासी होगा, तभी समाज उसका विरोध करेगा। जब भी कोई धार्मिक आदमी पैदा होगा, उसका विरोध शुरू हो जायेगा। लेकिन यह जो ढोंग है धर्म का, इसको आदर मिलेगा। क्योंकि आदर आप उसी को दे सकते हैं, जो आपकी मानता है; आपके नियम, आपकी व्यवस्था के अनुकूल चलता है।

आप क्या सोचते हैं? कोई आदमी, जिसका विवेक जाग्रत हुआ हो—आपका कोई विवेक जाग्रत नहीं हुआ है—क्या वह आपकी मानेगा? हालांकि आप उसको तख्त पर बिठाते हैं और पैर छूते हैं, लेकिन कुछ

करते हैं आप कि वह आपकी माने। तख्त पर बिठायेंगे! आपकी माने—तो पैर छुयेंगे। यह म्युचुअल लेन-देन है, यह आपका आर्थिक लेन-देन है कि आप इतना आदर देते हैं, इसके बल पर आपकी मानता है।

कोई संन्यासी आपकी मानेगा? अपके आदर की फिक्र करेगा? आपके आदर का उसे कोई मतलब है, कोई मूल्य है? वह तो जैसा जीवन उसे दिखायी पड़ेगा, वह जीयेगा।

संन्यासी बड़ा निजी जीवन जीता है। लेकिन आप जिसको संन्यासी कहते हैं, उसका बड़ा समूह से निर्धारित जीवन है। आप जैसा कह रहे हैं, वैसा वह कहता है। आप जैसा कह रहे हैं, वैसा वह कर रहा है। उसमें जरा गड़बड़ हुआ कि फिर वह संन्यासी नहीं है! फिर आप उसको आदर नहीं दोगे। उसकी आदर पाने की मन में बड़ी भावना है; अहंकार की तृप्ति का बड़ा लोभ है। उसके बल पर वह सब करता है; आपकी मानता है; नाटक करता है, अभिनय करता है। अगर आपका बोध जग जाये, तो आपको लगेगा—यह कैसा नाटक हो रहा है! यह कैसा सर्कस है? लेकिन अभी तो आपको वह संन्यासी दिखायी पड़ रहा है। आपके सामने एक पैटर्न है, एक ढांचा है, तो आपको वह संन्यासी लगता है।

मुझे इन सारी बातों में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता है। ये कोई बहुत अर्थ की बातें नहीं हैं। यह संन्यासी की व्यवस्था ज्यादा दिन चलेगी नहीं। जैसे-जैसे लोग मनसशास्त्र को समझेंगे, जैसे-जैसे लोग साइकोलाजी को समझेंगे, सौ साल के भीतर आपका यह संन्यासी टिकेगा नहीं। जिसको मैं संन्यासी कह रहा हूं, वही टिकेगा। पुराना संन्यासी टिकने वाला नहीं है। यह अस्तित्व में अब आगे नहीं जायेगी। अतीत में कितनी रही हो, यह आगे नहीं जा सकती। जैसे हम समझेंगे अस्तित्व को, विकारों को, और पागलपनों को, एस्केप को, भागने को, सप्रेशन को—हम पायेंगे: सब रुग्ण लोग हैं। यह आपको दिखायी पड़ने लगेगा कि ये सब रोग हैं।

कुछ थोड़े से संन्यासी रह जायेंगे और उन संन्यासियों की कोई वेश-भूषा नहीं होगी। हमेशा थोड़े से संन्यासी हुये हैं दुनिया में—यह सच है। लेकिन लाखों की संख्या में जो दिखाई पड़ रहे हैं, इनमें संन्यासी नहीं हैं, न हो सकते हैं। संन्यासी बड़े थोड़े इक्के-दुक्के हैं।

महावीर के जीवन में ऐसा हुआ कि जब वे अट्ठाइस वर्ष के थे, तभी उनके मन में हुआ कि सब व्यर्थ है। उन्होंने अपनी मां से, अपने पिता से कहा कि 'मैं छोड़कर जाता हूं।' उनकी मां रोने लगीं और कहा, 'मेरे जीते जी तुम जाओगे, तो मुझे बहुत दुख होगा। क्या इतनी हिंसा करने को तुम राजी हो?' तो महावीर ने कहा कि 'ठीक है। रुक जाते हैं।' अब यह रुकना बड़ा लंबा हो, क्योंकि मां पता नहीं कितने दिन जिंदा रहे! कोई मरने की तिथि तय तो थी नहीं, अभी कितने दिन जिंदा रहेगी? यह भी हो सकता है, महावीर पहले मरें, मां-बाप बाद में मरें! लेकिन महावीर रुक गये। यह आदमी संन्यासी रहा होगा। महावीर रुक गये कि ठीक है।

दो वर्ष बाद में मां मर गई। दफना के लौटते थे, तो अपने बड़े भाई को कहा कि 'अब मैं संन्यासी हो जाऊं?' लौटते थे दफना कर! बड़े भाई ने कहा, 'तुम कैसे पागल हो? एक तो आघात है मां के मर जाने का, और तुम्हें इतनी फुर्सत भी नहीं है कि थोड़े—दो दिन रुक जाते! अभी घर भी नहीं पहुंच पाए कि कह रहे हो!' बाद में उन्होंने कहा, 'अगर मैं कहूं, तो तुम संन्यासी हो जाना', भाई ने कहा कि 'जब तक मैं आज्ञा न दूं, तब तक अगर हुए तो मुझे बहुत दुख होगा।' तो महावीर रुक गए। यह आदमी संन्यासी रहा होगा। फिर रुक गए।

और घरवालों को लगा कि अब तो यह आदमी घर में होते हुए भी घर में नहीं है। हवा की तरह हो गए वे। कोई घर में उनका होना मालूम नहीं पड़ता कि वे घर में हैं। साथ ही सब विलीन हो गया, घर से सारा संबंध शून्य हो गया। हैं—और नहीं हैं।

एक आदमी ऐसा घर में हो सकता है कि वह घर में है और नहीं हैः आपके बीच में नहीं है, आपके किसी काम में नहीं है। आपको कोई बाधा नहीं देता है। उसका कोई आग्रह नहीं है। जो होता है, होने देता है। जो नहीं होता है, नहीं होने देता है। इस कमरे में कहें, तो इस कमरे में बैठ जाता है। बाहर निकाल देते हैं, तो बाहर बैठ जाता है।

जब चार वर्ष में लोगों को खयाल आया कि महावीर तो घर में नहीं हैं! तो उनके भाई ने कहा, 'अब तुम घर में रहो या न रहो, बराबर है। अब हमें रोकना व्यर्थ है। तुम तो जा ही चुके। अब हम क्यों अपने ऊपर यह पाप लें कि हमने तुम्हें रोका था! तुम जा ही चुके अपनी तरफ से। अब तुम्हारी जैसी मौज हो करो।'

इसको मैं संन्यास कहूंगा। यह लिया हुआ संन्यास नहीं है; यह विकसित हुआ संन्यास है। मेरी मान्यता है कि अगर महावीर के भाई कहते कि मत जाओ, तो महावीर वहीं रह जाते, क्योंकि जाने का क्या सवाल था! जो होना था, वह वहीं हो सकता था। यानी यह आग्रह ही हमारा कि ऐसे हो जायें, ऐसे भाग जायें; यह करें—वे सब हमारे रुग्ण चित्त के लक्षण हैं। वे किसी स्वस्थ चित्त के लक्षण नहीं हैं।

जो आप पूछते हैं न मुझे कि अगर आप गृहस्थ होते...? मेरी मां ने जिस दिन मैं यूनिवर्सिटी से पढ़कर घर आया, तो उसने कहा कि 'तुम शादी करो।' वे जानते थे सारे घर के लोग कि शायद मैं मना करूंगा। जैसी मेरी धारणा थी, जैसा मेरा हिसाब था, सबको खयाल था कि मैं फौरन मना करूंगा। मैंने अपनी मां को कहा, 'अगर तुम आज्ञा दोगी, तो मैं कर लूंगा। लेकिन आज्ञा देने से पहले खूब सोच लेना। तुम आज्ञा दोगी, तो मैं कर लूंगा। लेकिन आज्ञा देने के पहले बहुत सोच लेना कि सच में यह हितकर है या अहितकर है। अगर तुम्हारा निर्णय हो जाए कि हितकर है, तो मुझे कह देना कि कर लो, मैं कर लूंगा।'

अब वह चिंता में पड़ गयी होगी, बहुत चिंता में पड़ गई होगी। मैं रोज-रोज पूछने लगा। मैं उससे पूछता कि अगर हो गया हो तय, तो बताओ! जितना ही मैं पूछने लगा, उतना ही वह घबड़ाने लगी। और उनको ऐसा लगा कि इस पूरे व्यक्ति के जीवन को बांधने का आदेश मैं कैसे दूं! और पता नहीं, ठीक हो कि गलत। क्योंकि पूरी जिंदगी शादी करके वह भी इस नतीजे पर नहीं पहुंच सकती हैं कि ठीक हुआ था कि गलत हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा पंद्रह दिन बाद कि 'मुझसे न पूछो बार-बार। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं पूरा निर्णय नहीं कर सकती हूं कि क्या हितकर है, क्या अहितकर है।' ऐसे बात खत्म हो गयी।

प्रश्नः आप जो कह रहे हैं, बुद्धि तो उसे मानती है। पर आपने जब वह अनुभव पाया, तो आपको भी बड़ी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा होगा!

हां-हां, मैं समझ गया आपकी बात को। यह तो मैं कह रहा हूं निरंतर—जैसे मैं कह रहा हूंः चित्त को सब भांति से दूसरों के विचारों से स्वतंत्र कर लें। कह तो रहा हूं ऐसे जैसे यह एक तथ्य हुआ, लेकिन है मेरा

अपना अनुभव।

कभी किसी विचार में मैंने अपने को बांधा नहीं—किसी के विचार में। अगर मेरे पिता ने मुझसे कहा कि ये भगवान हैं, तो मैंने कहा, 'मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। आप कहते हो भगवान, आपको होंगे। लेकिन जहां तक मेरी आंख कहती है, मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। मैं कैसे मान लूं कि ये भगवान हैं! और आप कहते हैं, हाथ जोड़ो, तो मुझे मूर्खता मालूम पड़ती है क्योंकि मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ रही है। आपको भगवान दिखता है, आप जोड़ते हैं, आप जानें। मुझसे मत कहना, क्योंकि मुझे पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है। एक खिलौने को मैं जाकर हाथ जोडूं, तो मुझे लगता है कि मैं गड़बड़ काम कर रहा हूं।

एक बात मेरे ध्यान में रही है कि जो मुझे दिखाई पड़े तथ्य की तरह, वही मुझे समझना है। और जब समझाया जाए तथ्य किसी व्याख्या की तरह, तो बचना है। वह मुझे निरंतर...।

और वह जो आपसे कह रहा हूं कि तथ्यों को देखें और व्याख्याओं से बचें, क्योंकि व्याख्याएं दूसरे समझा रहे हैं। अपने बच्चे को आप मंदिर में ले जायें और बतायें कि 'ये भगवान हैं।' बच्चे के सामने तथ्य क्या है? अगर आप कुछ न समझायें तो बच्चा जाकर मंदिर में क्या कहेगा? कहेगा, 'ये पत्थर की मूर्तियां रखी हुई हैं।' यह तो तथ्य है, और व्याख्या यह है कि ये भगवान हैं। ये व्याख्यायें अगर चित्त में बैठ जायें तो आपका चित्त तथ्य को कभी नहीं जानेगा।

तो बचपन से मेरे दिमाग में कोई विद्रोह रहा है। हर किसी की बात को मानने को मैं तो बहुत घातक समझता रहा हूं—चाहे किसी की भी हो। मुझे यह देखना है पहले कि तथ्य इसमें कितना है। आपको मैं नहीं कहता कि आपको जो दिखाई पड़ता है, गलत दिखाई पड़ता होगा। लेकिन मैं कैसे मानूं? मुझे जो तथ्य है, उसको देखता हूं।

एक तो तथ्य का ध्यान रखना मैंने जरूरी माना है। धीरे-धीरे प्रयोग करने से खयाल में आया कि तथ्य के सिवाय और सत्य का कोई रास्ता नहीं हो सकता। क्योंकि तथ्य पर दूसरों ने जो कल्पनाएं थोप दी हैं, अगर उनको हमने पकड़ लिया, तो हम भटक गए। कोई हमारे प्रति उनकी जवाबदेही नहीं है कि एक आदमी ने बता दिया कि यह भगवान की मूर्ति है, अगर मैं इसकी बात को मान कर चला गया, तो कल मैं बुढ़ापे में जाकर उससे कहूं कि तुमने मेरी जिंदगी खराब की; तुम जिम्मेवार हो; तुमने ही कहा था! वह कहेगा कि 'मेरा क्या मतलब? मैंने तो जो मैं मानता था, मैंने कह दिया था। जिम्मेवारी मेरी मेरे प्रति है।'

मेरी जिम्मेवारी मेरे प्रति है, आपकी जिम्मेवारी आपके प्रति है। मेरी आप बात समझ रहे हैं न! तथ्यों को देखें। इसको मैं साइंटिफिक एप्रोच कहता हूं आदमी की।

वैज्ञानिक पकड़ होनी चाहिए किसी भी बात को देखने की। मुझे धीरे-धीरे यह हुआ। लेकिन मुझे, अगर मेरे पिता ने मुझसे कहा कि 'क्रोध करना बुरा है', तो मैंने कहा, 'ठहर जायें, इतना ही मुझसे कहें कि क्रोध करना मुझे बुरा मालूम होता है। मुझसे मत कहें कि बुरा है, क्योंकि मैं अनुभव करूंगा। आप कौन हैं बीच में आने को? आपकी क्या जिम्मेवारी है मेरे बीच में आने की? मुझे जीवन मिला है। मुझे जानने दें कि क्रोध बुरा है कि भला है। मैं करूंगा और जानूंगा। आपका अनुभव बता दें कि मुझे क्रोध बुरा मालूम होता है। क्योंकि मुझे आपके अनुभव पर भी शक है, क्योंकि आप अभी भी क्रोध करते हैं। अगर वह बुरा है, तो आपमें से चला

जाना चाहिए था! मुझे क्रोध करने दें और मुझे देखने दें। यानी मेरी...। मुझे आग में हाथ डाल लेने दें और मुझे देखने दें कि जल जाता है कि नहीं। मैं भी समझूंगा!

ऐसी तो मेरी प्रवृत्ति रही है और प्रवृत्ति के कुछ अदभुत परिणाम हुए हैं। मैं किसी भी, जिसको ढांचा कहें विचार का, वह मैं नहीं पकड़ सका। उससे बहुत दिक्कत हो गई। क्योंकि विचार का कोई ढांचा पकड़ लें, तो जीवन आसान हो जाता है। एक व्यवस्था हो जाती है। एक मंदिर है, एक भगवान है, एक किताब है, उसको रोज हाथ जोड़ लेना है। एक व्यवस्था हो जाती है, जीवन में एक आकुपेशन हो जाता है।

मैं बहुत दिक्कत में पड़ गया। यह भी मैं मानने को राजी नहीं कि क्रोध बुरा है कि भला है। मैं अनुभव करूंगा। तो मैं दिक्कत में पड़ गया, कठिनाई में पड़ गया।

सुविधा की वजह से आप सत्य से बच जाते हैं। हमेशा सुविधा खोजते हैं कि क्या सुविधापूर्ण है। सत्य के प्रारंभिक चरण तो बहुत असुविधापूर्ण होंगे। क्योंकि अगर सत्य असुविधापूर्ण न होता, तो असत्य को इतने लोग पकड़े क्यों बैठे रहते? असत्य सुविधापूर्ण है, अकसर सुविधापूर्ण है। क्योंकि वह प्रचलित है, व्यवस्थापूर्ण है। आप उसमें फिट हो जाते हैं, ज्यादा झंझट नहीं आती।

मैं तो दिक्कत में पड़ गया। दिक्कत में पड़ गया; बहुत तरह की कठिनाइयों में पड़ गया; ऐसी कठिनाइयों में कि जिनकी कल्पना नहीं कर सकते। छोटे-छोटे मुद्दे पर मेरा...। जब मेरे पिता ने कहा कि 'तुम्हें ब्रह्म-मुहूर्त में उठना है।' तो मैंने कहा, 'मेरी समझ में नहीं आता। मैं पहले एक महीना सो कर देखूंगा, एक महीना सुबह चार बजे उठकर देखूंगा फिर मुझे जो प्रीतिकर लगेगा वह मैं करूंगा। आपको मैं मानने को राजी नहीं हूं। मैं अपना प्रयोग करके देख लेता हूं।'

मेरा मतलब यह है कि मेरी वृत्ति प्रयोग करने की, तथ्य को पकड़ने की और किसी को नाहक स्वीकार करने की नहीं थी। तो असुविधा बहुत हुई। असुविधा चित्त की हुई। चित्त की असुविधा यह हो गई कि मैं बहुत करीब-करीब पागलपन की हालत में पहुंच गया। कुछ भी चीजें नहीं स्वीकार कीं। कोई शिक्षक, कोई गुरु, कोई संन्यासी, कोई वैद्य मुझे स्वीकार नहीं है। मैं तो पागल होने की हालत में पहुंच गया।

प्रश्नः आपने थोड़ी किताबें भी पढ़ी होंगी या कहीं से लिया होगा, तो क्या उन बातों की छाप आप पर नहीं पड़ी? क्या समझ स्वयं से आयी?

वह स्वयं से आयेगी। स्वयं से आने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। मेरे ऊपर किसी की कोई छाप नहीं पड़ी, बल्कि छाप न पड़े, इसके लिए हमेशा सजगता रही और छाप के प्रति विरोध रहा। छाप के प्रति मेरे मन में विरोध रहा। कोई छाप न पड़े—यह सजगता रही। जो मुझे ठीक लगे, चाहे वह सारी दुनिया को गलत लगता हो, उसको ही मुझे ठीक मानना है। उसको ही मानकर चाहे मैं नर्क में चला जाऊं, तो मुझे स्वीकार है। और सारी दुनिया ठीक कहती हो और मुझे ठीक न लगता हो और उसे मानकर मुझे स्वर्ग मिल जाये, तो मुझे स्वीकार्य नहीं है।

तो वैसी दृष्टि थी और उसकी वजह से चित्त धीरे-धीरे बहुत कठिनाई में पड़ गया। उसको मैंने जाना कि

वही तपश्चर्या है। मैंने जाना कि वही तपश्चर्या है। इतना चित्त कठिन हो गया कि मैं कोई वर्ष भर तक सो नहीं सका। मुझे कोई चीज स्वीकार नहीं है। अस्वीकार इतना गहरा हो गया कि मेरी नींद चली गयी। और घर के लोग समझे कि मैं पागल हो जाऊंगा। यानी शरीर का मैटाबोलिज्म गिरते-गिरते क्षीण हो गया और सिर्फ आंखें रह गयीं और पूरा शरीर चला गया—ऐसी हालत हो गयी! और घर के लोग समझे, मैं गया। मैं खुद भी नहीं जान पाया कि क्या होगा, क्योंकि किसी को मान लेने में कोई रास्ता दिखता नहीं। अड़चन बहुत हो गयी। किसी को मान लो, तो रास्ता मिल गया कि चलो भाई, यह ठीक है, यह रास्ता होगा। किसी को मान लेने में मुझे कोई रास्ता मिलता नहीं, तो फिर क्या होगा।

फिर क्लाइमेक्स पर पहुंच गया यह टैंशन। जैसे कि अगर हम किसी तीर को खींचें, तो उसकी जो प्रत्यंचा है, उसकी एक सीमा है खिंचने की। एक सीमा आएगी, उसके आगे आप नहीं खींच सकते। या टूट जायेगी प्रत्यंचा या तीर छूट जायेगा।

दो ही रास्ते थे—या तो पागल हो जाता, यह हो सकता था। लेकिन मैं खींचता ही चला गया। उस विकल्प से भी राजी था कि अपनी ही मानकर पागल हो जाना बेहतर है बजाय किसी और की मानकर स्वस्थ बने रहना। उससे राजी था, उस विकल्प पर। तो उसे खींचते ही चला गया। इसको मैंने तपश्चर्या जाना। और बहुत उसकी पीड़ा थी, लेकिन खींचता गया।

एक दिन अचानक हैरान हुआ, वह खींचते-खींचते एक घड़ी आयी, एक अंतिम सीमा आ गयी खींचने की और उसके बाद एकदम से रिलीज हो गई और एकदम से मैंने पाया कि विचार समाप्त हो गए। विचार है ही नहीं मन में। विचार को खींचते-खींचते वह घड़ी आ गयी कि विचार विलीन हो गए। और तब जो जाना, वही आपसे कह रहा हूं कि विचार आपके कैसे विलीन हो जायें। आपको तो एक मैथड की तरह कह रहा हूं। वह मैंने मैथड की तरह नहीं जाना था। यानी वह मेरे लिए तो एक आकाश से अकस्मात डिस्कवरी थी। वह मेरे लिए मैथड नहीं था। मुझे पता नहीं था कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ! अब सोचता हूं, तो दिखायी पड़ते हैं स्टैप्स—कि ऐसे हुआ होगा। वे स्टैप्स आपसे कह रहा हूं कि ऐसे हो सकता है। मेरे लिए वह कोई कांशस स्टैप्स नहीं थे। मैं तो जैसे चलता गया, चलता गया और एक घड़ी आयी कि कोई घटना घटी। घटना घटी कि किसी क्षण विचार समाप्त हो गया और कुछ दिखायी पड़ा—जब विचार नहीं थे उस वक्त। अब जो आपसे कह रहा हूं कि किस भांति आपके विचार चले जायें, तो शायद वह आपको दिखायी पड़ेगी; उसकी मैं बात करता हूं। और ऐसा जरूरी नहीं है कि वह ठीक मेरे ही जैसा आपके भीतर हो।

प्रश्नः सुख भी न हो और आनंद हो, यह कैसे हो सकता है।

तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कह रही हो? सुख भी न हो और दुख भी न हो, तब जो रह जाता है, उसी का नाम आनंद है। और अगर आनंद न हो, तो सुख-दुख होगा। तो सुख-दुख एक बात है और आनंद दूसरी बात है। जब तक सुख-दुख रहता है, तब तक आनंद का अनुभव नहीं होता है। तो जिसको हम आनंद कहते हैं, वह सुख का अनुभव है, आनंद का नहीं। आनंद बड़ी और बात है। आनंद का अनुभव और आत्मा के

अनुभव में भेद ही नहीं है। एक ही बात है, कोई भेद ही नहीं है।

सुख-दुख का अनुभव हमें होता है। सुख को आनंद कहने का कोई अर्थ नहीं है। अगर सुख-दुख का अनुभव बिलकुल न हो, तो आनंद का अनुभव हो जाएगा। तुम्हें अगर ऐसा लगता हो कि तुम्हें सुख-दुख का अनुभव नहीं होता है—यह दुख की बहुत गहरी अवस्था होगी। एक उदासी पकड़ गयी, वह भी दुख का हिस्सा है। एक जड़ता पकड़ गयी हो, एक इनडिफरेंस आ गया हो—यह भी दुख की अवस्था है, दुख का हिस्सा है। वह जो सुख-दुख के बाहर हुआ जा सकता है, तब आनंद का अनुभव होगा।

प्रश्नः क्या सुख-दुख का इनकार करना होगा बाहर से भी?

उसको नहीं कहता इनकार करें। लेकिन भीतर बहुत गहरे में तो इनकार करना पड़ेगा, नहीं तो आगे कैसे जायेंगे? जिस जमीन पर मैं खड़ा हूं उसको इनकार न करूं, तो फिर आगे की जमीन पर पैर कैसे रखूं? जिस सीढ़ी पर खड़ा हूं उसको इनकार न करूं तो आगे की सीढ़ी पर पैर कैसे जायेंगे? उसी पर खड़ा रहूं तो खड़ा रह जाऊंगा।

इनकार तो करना है किसी तल पर। बहुत तकलीफ होगी, बहुत पीड़ा होगी, क्योंकि इनकार करने में बड़ी दिक्कत है; सब सुविधा छोड़नी पड़ती है। लेकिन सत्य की आकांक्षा हो, आनंद का थोड़ा खयाल हो, तो कुछ तो करना होता है। इसको ही मैं त्याग कहता हूं। उसको नहीं कि कपड़े-लत्ते छोड़ दिए, धन-दौलत छोड़ दिया। वह कोई तकलीफ नहीं है बड़ी। बड़ी पीड़ा और बड़ी तपश्चर्या तो यह है कि मन के भीतर जो हमने संतोष और सुख और सुविधाएं बना रखी हैं और उनमें हम जी रहे हैं, उनको क्रमशः तोड़ें। बिना तोड़े नहीं हो सकता है और धीरे-धीरे अगर उसी में रहते जायें तो ऐसा होगा कि न सुख मालूम होगा, न दुख; वह एक तरह की दुख की अवस्था होगी।

घाटकोपर, बंबई; दिनांक 9 अप्रैल, 1966